भारतीय संघ में शामिल होने के समझौते पर हस्ताक्षर करे। महाराजा ने विलय पत्र पर बिना मणिपुर की निर्वाचित विधानसभा की सलाह लिए ही हस्ताक्षर कर दिए।

राज्यों का पुनर्गठन

1920 के नागपुर अधिवेशन के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह मान लिया कि राज्यों के पुनर्गठन का आधार भाषा होगी।

आन्ध्र प्रदेश का गठन

एक गाँधी नेता पोट्टी श्रीरामुलु ने भाषा के आधार पर आन्ध्र प्रदेश नाम से एक राज्य की माँग रखी तथा अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठे। 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद उनकी मृत्यु हो गई। रामुलु की मृत्यु के बाद अव्यवस्था का माहौल व्याप्त हो गया। हिंसक घटनाएँ बढ़ी। दिसम्बर 1952 में आन्ध्र प्रदेश नाम से एक अलग राज्य के गठन की घोषणा तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कर दी।

आन्ध्र प्रदेश के गठन के साथ ही देश के दूसरे हिस्सों में भी भाषाई आधार पर राज्यों के गठन की माँग जोर पकड़ने लगी। इस समस्या के हल के लिए राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति 1953 में की गई। इस आयोग का कार्य राज्यों के सीमांकन के मामलों पर गौर करना था। तथा इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1955 में दी जिसमें आयोग ने यह स्वीकार किया कि राज्यों की सीमाओं का निर्धारण वहाँ बोली जाने वाली भाषा के आधार पर होना चाहिए। राज्य पुनर्गठन आयोग की दी गई सिफारिशों के आधार पर 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम के आधार पर 14 राज्य व 6 केन्द्र शासित प्रदेश बनाए गए।

आज़ादी के बाद प्रारम्भिक वर्षों में यह एक बड़ी चिन्ता का विषय था कि अलग राज्य की माँग से देश की एकता पर आँच आएगी। तथा आशंका थी नए भाषाई आधार पर राज्यों में अलगाववाद की भावना पनपेगी। मगर यह आशकाएँ गलत साबित हुई, इसके विपरीत देश की एकता और अधिक मज़बूत हुई।

पाठगत अवधारणाएँ

1. राष्ट्र–'राष्ट्र' एक व्यापक अर्थ में एक 'कल्पित समुदाय' होता है जो सामान्यतय: सर्वसामान्य विश्वास, इतिहास, राजनीतिक आकांक्षाओं और कल्पनाओं से एकसूत्र में बंधा होता है।

2. राष्ट्रवाद–एक क्षेत्र विशेष के लोगों के बीच भावनात्मक तौर पर जुड़ाव तथा अपनेपन की गहरी भावना राष्ट्रवाद का निर्माण करती है। जिससे वह एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं।

3. राष्ट्र-निर्माण की चुनौतियाँ–भारत को एक नवोदित लोकतांत्रिक देश के रूप में अपनी एकता, अखण्डता व लोकतांत्रिक चरित्र को कायम रखने की चुनौतियाँ।

उदाहरणतय:

3.1. राष्ट्र के एकीकरण की समस्या या 565 देशी राजे-रजवाड़े को भारत में मिलाना।

3.2. लोकतांत्रिक व्यवस्था को कायम रखना।

3.3. तीव्र गति से आर्थिक व सामाजिक विकास करना। तथा इस विकास का लाभ सबसे गरीब और पिछड़े व्यक्ति को भी मिल सके।

3.4. लोकतंत्र–अब्राहिम लिंकन के अनुसार ''लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए, व जनता के द्वारा शासन है।''

3.5. द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के अनुसार भारत किसी एक कौम का नहीं बल्कि 'हिन्दू' और 'मुसलमान' नाम की दो कौमों का देश था। इसी कारण मुस्लिम लीग व उनके नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों के लिए एक अलग देश पाकिस्तान की माँग की। यह सिद्धान्त ही 1947 ई. में ब्रिटिश इण्डिया के दो देशों में बंटने का आधार बना।

6. अल्पसंख्यक–किसी क्षेत्र विशेष में भाषाई, धार्मिक, सांस्कृतिक इत्यादि के आधार कम संख्या में रहने लोगों को अल्पसंख्यक कहते हैं। जैसे भारत में मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख,पारसी अल्पसंख्यक है।

7. विस्थापन–लोगों को उनके रहने के स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर बसाना किया जाना।

उदाहरण–विभाजन के समय पाकिस्तान से हिन्दुओं व सिक्खों को विस्थापित किया गया।

8. देशी राजे-रजवाड़े–रजवाड़ों पर भारतीय शासकों का शासन होता था। इन शासकों ने ब्रिटिश-राज की अधीनता या सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार कर लिया था। यह शासक अपने राज्य के घरेलू या आन्तरिक मामलों पर स्वयं शासन चलाते थे। भारत की आज़ादी के समय इनकी संख्या लगभग 565 थी।

9. 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन'–भारतीय संघ में विलय के सहमति पत्र पर देशी राजे-रजवाड़ों द्वारा हस्ताक्षर किया गया इस सहमति पत्र को ही 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' के नाम से जाना जाता है।

10. रज़ाकार–रज़ाकार एक उर्दू शब्द है जिसका अर्थ है-स्वयंसेवक (Volunteer) । मगर यहाँ इसका अभिप्राय हैदराबाद के शासक जिसे 'निज़ाम' के नाम से पुकारा जाता था उनके अर्द्धसैनिक बल से हैं।

11. सार्वभौम व्यस्क मताधिकार–सभी वयस्क स्त्री व पुरूष नागरिक को एक निश्चित आयु प्राप्त करने के बाद जाति, धर्म, लिंग, वर्ग इत्यादि के भेदभाव के समान रूप से वोट देने का अधिकार प्रदान किया जाना है। सार्वभौम व्यस्क मताधिकार कहा जाता है। भारत में वर्तमान में वोट देने की न्यूनतम आयु 18 वर्ष है।

प्रस्तावित/सुझावित क्रियाकलाप

1. विद्यार्थियों को विभाजन के बारे में अपने दादा-दादी, नाना-नानी व पड़ोस के वृद्धों से जानकारी इकट्ठा करके एक प्रोजेक्ट तैयार करवाया जाए।

2. विभाजन के समय घटी घटनाओं पर चर्चा करवाई जाएँगी।

संर्वद्धित मूल्य–

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थियों में निम्न मूल्य विकसित हो सकेंगे-

1. लोकतंत्र तथा मानवीय मूल्यों का सुदृढ़ीकरण।

2. पारस्परिक सद्भाव व अहिंसा की स्वीकार्यता।

3. सार्वजनिक हित।

महत्वपूर्ण प्रश्न–

प्रश्न 1. भारत में देश के विभाजन में कौन से दो प्रान्तों का भी बँटवारा किया गया? (1 अंक)

प्रश्न 2. 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' से क्या अभिप्राय है? (1 अंक)

प्रश्न 3. पण्डित नेहरू ने 'ट्रिस्ट विद् डेस्टिनी' अथवा 'भाग्यवधू से चिर-प्रतीक्षित भेंट' कब तथा कहाँ दिया था? (1 अंक)

प्रश्न 4. स्वतंत्रता के समय भारत में किन दो मुद्दों पर आम सहमति थी? (2 अंक)

प्रश्न 5. भारत की स्वतंत्रता के समय, देश के समक्ष आई किन्हीं दो चुनौतियों का उल्लेख कीजिए। (2 अंक)

प्रश्न 6. कराची में 11 अगस्त 1947 को मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा दिए गए अध्यक्षीय भाषण के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए : (5 अंक)

''हमें बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों की इन जटिलताओं को दूर करने की भावना से काम करना चाहिए। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक- दोनों ही समुदायों में तरह-तरह के लोग शामिल हैं। अगर मुसलमान, पठान, पंजाबी, शिया और सुन्नी आदि में बँटे हैं तो हिन्दू भी ब्राह्मण, वैष्णव, खत्री तथा बंगाली, मद्रासी आदि समुदायों में.....। पाकिस्तान में आप आज़ाद हैं, आप अपने मन्दिर में जाने के लिए आज़ाद हैं, आप अपनी मस्जिद में जाने या किसी भी अन्य पूजास्थल पर जाने के लिए आज़ाद हैं। आपके धर्म, आपके धर्म, आपकी जाति या विश्वास से राज्य को कुछ लेना-देना नहीं है।''

(अ) क्या आप समझते हैं कि जिन्ना का वक्तव्य उस सिद्धान्त के विरूद्ध है जिसके अनुसार पाकिस्तान का जन्म हुआ? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। (1 अंक)

(ब) इस लेखांश में जिन्ना के वक्तव्य का क्या सार है? (2 अंक)

(स) इस लेखांश में पाकिस्तान, किस सीमा तक जिन्ना की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है? (2 अंक)

7. (अ) यह कार्टून क्या दर्शाता है? (1 अंक)

(ब) राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना किस उद्देश्य से की गई थी? (2 अंक)

(स) राज्य पुनर्गठन आयोग की प्रमुख सिफारिश क्या थी? (2 अंक)

8. 1947 में हुए भारत के विभाजन के किन्हीं दो कारणों का आकलन कीजिए। इस विभाजन के किन्हीं चार परिणामों की व्याख्या कीजिए। (6 अंक)

पाठ-3

विकास

विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके परिणास्वरूप मानव के जीवन में लगातार बदलाव आता रहता है। आदि मानव से अंतरिक्ष युग तक का मानवीय सफर विकास का ही प्रतिफल है। लेकिन एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में विकास पर बौद्धिक चर्चा तथा सिद्धान्त निर्माण द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ही शुरू हुआ। जब विकास और अल्पविकास पर सिद्धान्त पेश किये जाने लगे। 18 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ताकतों द्वारा एशिया और अफ्रीका तथा दुनिया के अन्य भागों में विशाल साम्राज्यों की स्थापना की गई। साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा उपनिवेशों का निर्दयता से शोषण किया गया, तथा वहाँ के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताने बाने को तहस नहस कर दिया गया। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश गरीबी, भुखमरी और पिछड़ेपन के पर्याय बनकर रह गये। विकास इन देशों के लिये जीवन और मरण का प्रश्न बन गया। अपने संकीर्ण अर्थ में विकास को केवल आर्थिक विकास से जोड़कर देखा जाता है जिसमें प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, औद्योगीकरण, कृषि के आधुनिकीकरण को ही विकास मान लिया जाता है। लेकिन विकास एक बहुआयामी अवधारणा है इसके आर्थिक के अलावा राजनीतिक और सामाजिक आयाम भी होते हैं। कुछ विचारक तो राजनीतिक विकास को आर्थिक विकास की पूर्वशर्त भी मानते हैं। वास्तव में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास एक दूसरे के कारण और परिणाम दोनों ही है।

प्रत्येक समाज और देश विकास करना चाहता है, लेकिन विकास का कौन सा प्रतिमान (मॉडल) अपनाया जाए यह हमेशा से विवाद का विषय रहा हैं द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में आर्थिक विकास के मुख्य रूप से दो प्रतिमान (मॉडल) प्रचलित थे–पूँजीवाद और समाजवाद मॉडल। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् विश्व भर में उदारीकरण और वैश्वीकरण की लहर चल पड़ी जो कि पूँजीवादी विचारधारा का विस्तार है। लेकिन विकास के इस मॉडल के अन्तर्विरोध (Contradictions) भी सामने आने लगे हैं। वैश्वीकरण और बहुराष्ट्रीय नियमों के खिलाफ भारत सहित दुनिया के कई देशों में जन आन्दोलन मुखर होने लगे हैं। विकास के परम्परागत मानकों राष्ट्रीय आय, प्रतिव्यक्ति आय, उत्पादकता, औद्योगीकरण आदि के साथ-साथ मानव विकास सम्बन्धी दृष्टिकोण की स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है। इसके अलावा विकास के वैकल्पिक सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनके द्वारा मानव विकास को सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरण का संरक्षण भी किया जा सके। विकास की अवधारणा, इसके प्रमुख प्रतिमान, विकास विविध आयाम (पक्ष) तथा विकास की वैकल्पिक अवधारणा पर हम आगे विस्तारपूर्वक चर्चा करेगें।

अधिगम उद्देश्य–

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् हम–

– विकास की संकल्पना (अवधारणा) को बेहतर ढंग से समझ सकेगें।

– विकास की पूँजीवादी और समाजवादी अवधारणा को समझ सकेगें।

– विकास के विविध आयामों (पक्षों) सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक को स्पष्ट कर सकेगें।

– विकास के वैकल्पिक मॉडल की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

विकास की अवधारणा (Concapt of Development) हम यह स्पष्ट कर चुके है कि विकास से अभिप्राय केवल आर्थिक विकास नहीं है बल्कि इसके सामाजिक और राजनीतिक पक्ष भी होते हैं। इसलिये विकास की एक व्यापक परिभाषा देना आवश्यक हो जाता है जिसमें इसके सभी पक्ष समाहित हो। विश्व बैंक रिपोर्ट-2000 में कहा गया है कि, विकास का अर्थ है लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना, उनकी क्षमताओं का

विस्तार करना ताकि वे अपने भविष्य का निर्माण कर सके। इसके लिये उच्च प्रतिव्यक्ति आय के साथ-साथ शिक्षा और रोजगार के समान अवसर, लैंगिक समानता तथा बेहतर स्वास्थ्य और पोषण आवश्यक है। इस प्रकार विश्व बैंक द्वारा दी गई विकास की परिभाषा में विकास के सामाजिक और आर्थिक पक्ष उजागर होते हैं। अपने व्यापक अर्थ में विकास शब्द उन्नति, प्रगति, कल्याण और बेहतर जीवन की अभिलाषा के विचारों का वाहक है। जब हम बेहतर जीवन की बात करते है तो वह तभी संभव है जब मनुष्य के लिये अनुकूल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ हो। बेहतर जीवन के लिये जहाँ एक और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है वही शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ-साथ सरकार द्वारा लोगों के अधिकारों का सम्मान भी आवश्यक है। इसके साथ-साथ विकास की प्राथमिकतायें तय करने में लोगों की भागीदारी होनी चाहिए। इस प्रकार जन सहभागिता और लोकतंत्रीकरण भी विकास के लिये आवश्यक है।

विकास का एकमार्गी दृष्टिकोण–इस दृष्टिकोण को मानने वालों का कहना था कि विकास का केवल एक मार्ग है सभी राष्ट्र विकास के इस मार्ग पर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हैं। दूसरे शब्दों में पश्चिमी विकसित देश इसमें आगे हैं तथा एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। इसमें विकसित राष्ट्रों को एक आदर्श के रूप में पेश किया गया। इस दृष्टिकोण के कारण पश्चिमी विकास के मॉडलों को तृतीय विश्व के देशों में लागू किया गया, जो कि अधिकतर देशों में असफल रहे।

विकास का बहुमार्गी दृष्टिकोण–यह दृष्टिकोण मानता है कि विकास बहुआयामी होता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से विकास के उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित होते हैं। और इसी से विकास की दिशा निर्धारित होती है।

विकास के उद्देश्य–विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं,

(i) लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना

(ii) शिक्षा और स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करना

(iii) रोजगार के समान अवसर प्रदान करना

(iv) जन सहभागिता और लोकतंत्र को बढ़ावा देना तथा लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना।

विकास के प्रतिमान (मॉडल)–

(क) उदारवादी पूँजीवादी मॉडल–यह मॉडल निजीकरण का समर्थन करता है तथा आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की मनाही करता है। यह चाहता है कि अर्थव्यवस्था बाजार ताकतों, अर्थात् माँग और पूर्ति द्वारा संचालित होनी चाहिये न कि राज्य के नियमों और कानूनों द्वारा। कालान्तर में पूँजीवादी मॉडल में कुछ बदलाव आ गये तथा राज्य की कल्याणकारी भूमिका को स्वीकार किया जाने लगा। पूँजीवादी देशों में महामंदी (1929-33) के पश्चात् कीन्स के सिद्धान्त के अनुरूप राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार किया जाने लगा।

(ख) विकास का समाजवादी मॉडल–विकास का यह मॉडल कार्ल मार्क्स और लेनिन के विचारों पर आधारित है। समाजवादी मॉडल उत्पादन व वितरण के समस्त साधनों पर राज्य के नियंत्रण का पक्षधर है। यह भूतपूर्व सोवियत संघ की तर्ज पर आर्थिक विकास के लिये केन्द्रीकृत नियोजन (Centralised Planning) को आवश्यक मानता है।

(ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल–भारत सहित कई विकासशील देशों द्वारा पूँजीवादी और समाजवादी मॉडल का मिश्रित रूप अपनाया जिसमें निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को स्वीकार किया गया तथा विकास में राज्य की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित की गई।

(घ) विकास का गाँधीवादी मॉडल–गाँधीवादी मॉडल आर्थिक संसाधनों के विकेन्द्रीकरण, श्रमप्रधान, कुटीर उद्योग तथा पर्यावरण और प्रकृति के अनुकूल विकास पर जोर देता है।

विकास के विविध आयाम या पक्ष–

(i) सामाजिक विकास–शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, लैंगिक समानता सामाजिक कुप्रथाओं व भेदभाव की समाप्ति अर्थात सामाजिक समानता सामाजिक विकास के सूचक हैं।

(ii) आर्थिक विकास–राष्ट्रीय आय व प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, औद्योगीकरण अर्थात् उत्पादन की प्रणालियों का आधुनिकीकरण, रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा आर्थिक असमानता और गरीबी का उन्मूलन आदि आर्थिक विकास के सूचक है।

(iii) राजनीतिक विकास–राजनीतिक विकास की कोई एक स्पष्ट पहचान मुश्किल है। इसे प्रशासकीय और वैधानिक विकास के रूप में व्यक्त किया जाता है। लुसियन पाई ने अपनी पुस्तक 'Aspects of Political Development' में राजनीतिक विकास की निम्न तीन विशेषतायें बताई हैं।

समानता (Equality)–सभी के लिये समान कानून, सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के समान अवसर तथा सार्वजनिक मामलों में समान भागीदारी।

क्षमता (Capacity)–सरकार की आवश्यक कार्यों को करने की क्षमता तथा अपने नियमों-कानूनों व नीतियों को कार्यान्वित करने की क्षमता।

विभेदीकरण (Differentiaton)–समाज राज्य व सरकार के विभिन्न अंगों, पदों, विभागों के कार्य व शक्तियों का सुस्पष्ट विभाजन।

विकास की चुनौतियाँ–द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् नव स्वतंत्र देशों में विकास के जो मॉडल अपनाये गये थे उनसे यह अपेक्षा थी कि वे गरीबी, कुपोषण, निरक्षरता, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का समाधान करेगें। लेकिन विकास के मॉडल असफल सिद्ध हुये। भारत में भी नियोजित विकास के अन्तर्गत औसत विकास की दर 1980 के दशक तक 3.5 से 4 प्रतिशत तक ही रही जिसके कारण हम गरीबी उन्मूलन के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी पीछे रह गये। आज भी हमारे देश में लगभग 30 करोड़ आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। विकास का लाभ समाज के निम्नतम् वर्ग तक नहीं पहुँच पाया। 1991 में नई आर्थिक नीति अपनाने के पश्चात् विकास की गति तो तेज हो गयी लेकिन विकास का लाभ कुछ वर्गों और कुछ शहरी क्षेत्रों तक सिमटकर रह गया। किसान कर्ज में डूबे व आत्महत्या करने पर मजबूर है तथा सिंचाई सुविधाओं के अभाव में कृषि क्षेत्र आज भी वर्षा पर निर्भर है। यही कारण है कि विगत कुछ वर्षों में विकास के मॉडल की कटु आलोचना हो रही है इस पर पुनर्विचार शुरू हो गया है।

विकास के मॉडल की आलोचना

विकास की वह कीमत जो समाज को चुकानी पड़ी–वास्तविक विकास वह है जिससे समाज के सभी वर्गों का जीवन बेहतर हो। समाज के एक वर्ग का विकास दूसरे वर्ग के लिये बर्बादी नहीं होना चाहिए। लेकिन ऐसी अनेक परियोजनायें बिना स्थानीय लोगों से विचार-विमर्श के लागू कर दी जाती है जिससे लाखों लोगों को अपने घर, खेत व खलियान से विस्थापित होना पड़ता है। नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर परियोजना, टिहरी परियोजना

इसके कुछ उदाहरण है। जिसके कारण लाखों लोग विस्थापित हो गये, विशेषकर मूलवासी (आदिवासी)।

विकास की वह कीमत जो पर्यावरण को चुकानी पड़ी–विकास के प्रचलित मॉडल से पर्यावरण को भारी क्षति पहुँची है। दुनियाभर में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ा है जिसके कारण भूताप में वृद्धि हुई है। जंगलों के कटाव तथा वायु और जल प्रदूषण से मानव के स्वयं के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। नदियाँ नालों में तब्दील होती जा रही है।

विकास की वैकल्पिक अवधारणा–विश्व भर में बुद्धि- जीवी अब इस बात पर सहमत हैं कि विकास की प्रचालित अवधारणा में कुछ नैसर्गिक कमियाँ

हैं। विकास को मापने के भी नये तरीके ढूढ़े जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme) द्वारा मानव विकास सूचकांक (H D I) में विकास के तीन सूचक बताए हैं।

– जीने का समुचित स्तर (Deicent Standard of Living)

– ज्ञान व साक्षरता स्तर (Knowledge)

– दीर्घायु (Longevity)

इस प्रकार प्रतिव्यक्ति आय के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे सामाजिक संकेतकों को भी विकास का स्तर मापने का आधार मानता है।

टिकाऊ विकास– विकास की वैकल्पिक अवधारणा के अर्न्तगत इस बात पर भी जोर दिया गया है। कि विकास ऐसा हो कि जो वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को तो पूरा करें लेकिन आने वाली पीढ़ियों के हितों का भी ध्यान रखें, अर्थात् वर्तमान पीढ़ी का विकास आने वाली पीढ़ियों की कीमत पर नहीं होना चाहिऐ। यदि हमारी पिछली पीढ़ी को स्वच्छ और निर्मल नदी मिली है तो अगली पीढ़ी को भी वह उसी रूप में मिलनी चाहिए न कि नालों में तब्दील होकर। बर्टलैंड आयोग 1987 ने टिकाऊ विकास की अवधारणा को प्रचलित किया। टिकाऊ वास्तव में पर्यावरण के अनुरूप विकास है।

जन सहभागिता– विकास सम्बन्धी निर्णयों में लोगों की सहभागिता होनी चाहिये। लोगों के जीवन और आजीविका को प्रभावित करने वाले निर्णयों में उनसे सलाह ली जानी चाहिये। जल, जमीन और जंगल के लिये चल रहे संघर्षो का लोकतांत्रिक तरीके से समाधान ढूँढ़ा जाना चाहिये। सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिये ताकि विकास सम्बन्धी ज्यादा से ज्यादा निर्णय स्थानीय स्तर पर लिये जा सके।

विकास से अभिप्राय बेहतर जीवन प्रदान करने से है। संसाधनों का न्यायपूर्ण, वितरण, पर्यावरण के अनुरूप अर्थात् टिकाऊ विकास, और जन सहभागिता व लोकतंत्र विकास की वैकल्पिक अवधारणा के प्रमुख घटक हैं।

पाठगत अवधारणाएँ

विकास–उन्नति, प्रगति, कल्याण और बेहतर जीवन तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सकारात्मक बदलाव।

आधुनिकीकरण–आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिकरण व आधुनिक तकनीक का प्रयोग, सामाजिक क्षेत्र में जन सहभागिता और लोकतंत्रीकरण, आधुनिकीकरण के प्रतीक हैं।

तृतीय विश्व के देश–निम्न प्रतिव्यक्ति आय वाले देशों को तृतीय विश्व के देश कहा जाता है। इस वर्ग में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश आते हैं।

प्रथम विश्व–अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा नाटो के सदस्य देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है।

द्वितीय विश्व–पूर्व सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप के वे देश जहाँ पहले साम्यवादी व्यवस्था प्रचलित थी।

महामन्दी (1929-33)–विश्व व्यापी आर्थिक मंदी जिसकी शुरूआत संयुक्त राज्य अमेरिका से हुई तथा जल्दी ही यह पूरे विश्व में फैल गयी।

संवर्धित मूल्य–इस पाठ को पढ़ने से छात्रों में गरीबी और पिछड़ेपन के प्रति संवेदना का विकास किया जा सकेगा और वे ऐसे लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसात कर पायेंगे जो सामाजिक बदलाव और आर्थिक उन्नति के लिये अनिवार्य है।

क्रियाकलाप–समाचार पत्र व पत्रिकाओं तथा इंटरनेट के माध्यम से केन्द्र या किसी एक राज्य सरकार की किसी एक विकास योजना के विषय में जानकारी एकत्रित कीजिऐ। उसके द्वारा होने वाले लाभ और हानि का आंकड़ों के माध्यम से आंकलन कीजिए।

मूल्यांकन–

प्र.1. विकास को परिभाषित कीजिए।

प्र.2. आर्थिक विकास को कैसे मापा जाता है?

प्र.3. गाँधीवादी विकास के मॉडल की कोई दो विशेषताएँ लिखिए। ½×2=1

प्र.4. समाजवादी विकास मॉडल की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए। 2

प्र.5. विकास के चार प्रमुख उद्देश्य लिखिए। ½×4=2

प्र.6. विकास के समाजवादी और पूँजीवादी मॉडल में अन्तर स्पष्ट कीजिए। 4

प्र.7. उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए कि किस प्रकार समाज को विकास की भारी कीमत चुकानी पड़ती है? 5

प्र.8. विकास की वैकल्पिक अवधारणा का वर्णन कीजिए। विकास की प्रचलित अवधारणा से पर्यावरण को

किस प्रकार हानि पहुँची है? 6

पाठ-4

नियोजित विकास की राजनीति

स्वतंत्र भारत के राजनीतिक नेतृत्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती गरीबी दूर करने की थी। लगभग दो सौ वर्षों के औपनिवेशिक शासन के कारण भारत की जनता और यहाँ के संसाधनों का इतना शोषण हुआ कि आजादी के समय भारत की गिनती दुनिया के अत्यधिक पिछड़े देशों में होने लगी। भारत के नीति निर्धारकों व संविधान निर्माताओं में उस समय प्रचलित वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों विचारधाराओं के लोग थे इसके अलावा एक बहुत बड़ा वर्ग गाँधीवादी विकास की धारणा को लागू करने का पक्षधर भी था। वैचारिक मतभेद के बावजूद राजनीतिक नेतृत्व में कुछ बातों पर स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले से ही सहमति थी, जैसे सभी इस बात से सहमत थे कि भारत के विकास का अर्थ आर्थिक संवृद्धि और सामाजिक-आर्थिक न्याय दोनों ही

है। आज़ादी के आन्दोलन के दौरान ही यह बात भी साफ हो गई थी कि गरीबी मिटाने और सामाजिक-आर्थिक पुनर्वितरण में सरकार की निर्णायक भूमिका होगी। हमारा संविधान भी राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत राज्य को अनेक ऐसे निर्देश देता है जो सामाजिक-आर्थिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करने के लिये आवश्यक है। 1950 के दशक में विश्व में मुख्य रूप से विकास के दो मॉडल प्रचलित थे-उदारवादी पूँजीवादी मॉडल और समाजवादी मॉडल। उदारवादी पूँजीवादी मॉडल मूलरूप से अहस्तक्षेपी राज्य और निजी क्षेत्र का समर्थक है लेकिन पूँजीवादी देशों में भी महामंदी (1929-33) के पश्चात् यह आम राय थी कि अर्थव्यवस्था को केवल बाजार की ताकतों पर नहीं छोड़ा जा सकता अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक है। दूसरी तरफ समाजवादी मॉडल अर्थव्यवस्था पर राज्य के पूर्ण नियंत्रण का पक्षधर था। भारत में इन दोनों मॉडलों के मिश्रण को 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' के रूप में अपनाया गया।

सोवियत संघ के त्वरित व समयबद्ध विकास से प्रेरित होकर भारत में–नियोजित आर्थिक विकास की नीति को अपनाया गया।

अधिगम परिणाम–

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् हम–

– द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में प्रचलित प्रमुख विकास मॉडलों से अवगत होंगें।

– आर्थिक विकास के वाम पंथी और दक्षिण पंथी विचार को समझ सकेंगें।

– भारत में नियोजित विकास की पृष्ठभूमि से अवगत होंगें।

– भारत में आर्थिक विकास से जुड़े प्रमुख विवादों को समझकर उनका समाधान सुझा सकेंगे।

अवधारणा मानचित्र (Concept Map)

नियोजित आर्थिक विकास से अभिप्राय विकास की ऐसी प्रक्रिया और रणनीति से है जिसमें देश अपने भौतिक और मानवीय संसाधनों का आंकलन कर विकास के कुछ लक्ष्य निर्धारित करता है तथा उन्हें सीमित समय (पंचवर्षीय योजना) में प्राप्त करने का प्रयास करता है। नियोजित आर्थिक विकास की अवधारणा सोवियत संघ से ली गयी, भारत का राजनीतिक नेतृत्व विशेषकर नेहरू सोवियत संघ के नियोजित आर्थिक विकास से अत्यधिक प्रभावित थे क्योंकि एक तो नेहरू का झुकाव समाजवादी विचारधारा की और था दूसरा महामंदी के कारण जहाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्थायें 1930 और 1940 के दशक भारी कठिनाइयों व चुनौतियों से जूझ रही थी वही दूसरी और सोवियत संघ उस दौर में भी शानदार आर्थिक प्रगति कर रहा था।

नियोजित आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है निजी क्षेत्र पर कई तरह के नियंत्रण लगाये गये तथा महत्त्वपूर्ण उद्योग और सेवायें सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत विकसित की गयी।

भारत में नियोजित आर्थिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–

– 1931 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने अपने करांची अधिवेशन में भारतीय नागरिकों के लिए सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की माँग की। इससे स्पष्ट हो गया कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में राज्य की सक्रिय भूमिका की पक्षधर थी।

– महामंदी (1929-33) में पूँजीवादी अर्थव्यवस्थायें तहस नहस हो गयी। इस काल में सोवियत संघ द्वारा दर्ज की गयी तीव्र प्रगति से नियोजित आर्थिक विकास के प्रति आकर्षण बढ़ गया।

– 1934 में सर एम. विश्वैस्वरया ने एक पुस्तक प्रकाशित की, 'Planned Economy for India' इसमें भारत के लिये नियोजित विकास की वकालत की गयी।

– 1938 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति (National Planning Committe) का गठन किया।

– बॉम्बे योजना (Bombay Plan)-1944- फिक्की (Ficci) के आठ प्रमुख उद्योगपतियों ने बॉम्बे प्लान पेश किया। सामान्यत: पूँजीपति नियोजित विकास के विरूद्ध होते हैं लेकिन भारत में पूँजीपति चाहते थे कि सरकार आधारभूत उद्योग और संरचना में स्वयं निवेश करें क्योंकि में उस समय पूँजीपति वर्ग के पास इतनी पूँजी नहीं थी कि वे लौह-इस्पात, रेल, सड़क, बन्दरगाह,संचार जैसे उच्च निवेश वाले क्षेत्रों में पूँजी लगा सके।

– 1944 में ही श्रीमन नारायन ने गाँधी योजना पेश की, जिसमें गाँधीजी के विचारों पर आधारित आर्थिक विकास की योजना पेश की गयी।

– 1945 में समाजवादी क्रान्तिकारी विचारक एम.एन रॉय ने जन योजना (Peoples Plan) पेश किया।

– 1950 में जय प्रकाश नारायण ने सर्वोदय योजना (Sarvodaya Plan) पेश किया।

नियोजित आर्थिक विकास पर लगभग आम सहमति होने के कारण तत्कालीन सरकार के लिये इस विषय में निर्णय लेना आसान हो गया। 15 मार्च 1950 को सरकार के एक आदेश द्वारा योजना आयोग की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना एक सलाहकारी और विशेषज्ञ निकाय के तौर पर की गयी, पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गयी। प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं इस कारण से भी आर्थिक नीति निर्माण में योजना आयोग निर्णायक भूमिका निभाने लगी। 2014 में गठित नयी केन्द्र सरकार द्वारा योजना आयोग की जगह नीति आयोग का गठन किया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)–

– प्रथम पंचवर्षीय योजना के. एन. राज की सलाह पर तैयार की गयी।

– प्रथम पंचवर्षीय योजना में मुख्य रूप कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दी गयी। कृषि क्षेत्र से जुड़ी परियोजनाओं पर भारी निवेश किया गया। भाखड़ा नांगल बाँध, हीराकुण्ड बाँध इसी योजनाकाल में बनाये गये।

– भूमि सुधार कानून बनाये गये जिसके अन्तर्गत निम्न कदम उठाये गये।

(क) जमींदारी उन्मूलन।

(ख) भूमि पर मालिकाना हक की अधिकतम सीमा तय की गयी।

(ग) चकबंदी (Consolidation of land loldings)

– प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल बजट का 15.1 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर 7.6 प्रतिशत उद्योगों के विकास के लिए निर्धारित किया गया। इस पंचवर्षीय योजना में 2.1 प्रतिशत GDP (सकल घरेलू उत्पाद) में वृद्धि का लक्ष्य रखा गया लेकिन वास्तव में 3.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना–(1956-61)- द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूप रेखा एक विशेष संदर्भ में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पी. सी. महालनोविस की सलाह पर तैयार की गयी। यह संदर्भ था, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अवाडी अधिवेशन 1955 जिसमें पार्टी ने समाजवादी समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया। इसी उद्देश्य के अनुरूप 1956 में औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इसमें उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया–सार्वजनिक क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र और निजी क्षेत्र। सभी महत्त्वपूर्ण उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत विकसित करने का निर्णय लिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई। तर्क दिया गया कि गरीबी दूर करने के लिए विकास की उच्च वृद्धि दर को हासिल करना आवश्यक है तथा यह तीव्र औद्योगीकरण से ही संभव है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कुल बजट का 18.5 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र के लिये सुनिश्चित किया गया जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह मात्र 7.6 प्रतीशत था। योजनाकाल के पाँच वर्षो में सकल घरेलू उत्पाद में 4.5 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया लेकिन 4.1 प्रतिशत की वृद्धि ही हासिल की जा सकी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में तीन लौह इस्पात कारखाने स्थापित किये गए।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–66) में विभिन्न क्षेत्रों के बीच बजट का विभाजन दूसरी पंचवर्षीय योजना के समान ही रहा केवल कृषि क्षेत्र के बजट में कुछ बढ़ोतरी की गयी। तीसरी पंचवर्षीय योजना पूरी तरह असफल रहे। इसमें 5.6 प्रतिशत विकास की दर का लक्ष्य रखा गया था जबकि वास्तव में मात्र 2.7 प्रतिशत ही वृद्धि प्राप्त की जा सकी। 1966 से 1969 तक वार्षिक योजनायें बनायी गयी।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) तृतीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने के तीन वर्ष बाद शुरू की गयी।

क्रियाकलाप (ACTIVITY)—पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न क्षेत्रों को आबंटित बजट का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए। कृषि और औद्योगिक क्षेत्र की वर्तमान समस्याओं का समाधान करने के लिये आप क्या रणनीति अपनाएंगे।

मुख्य विवाद (Key Controversy) भारत में योजनाकारों के समक्ष निम्न विवादों का समाधान करना चुनौतीपूर्ण रहा।

(क) कृषि बनाम उद्योग– प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्राथमिकता दी गयी किन्तु दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि के बजाय उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी। सरकार का तर्क था कि उद्योगों में भारी निवेश से तेज विकास सम्भव है जबकि कई अन्य जैसे जे.सी.कमारप्पा, चौधरी चरण सिंह का मानना था कि पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

(ख) निजी क्षेत्र बनाम सार्वजनिक क्षेत्र–

भारत द्वारा अपनायी गयी मिश्रित अर्थव्यवस्था का वामपंथी और दक्षिण पंथी दोनों आलोचना करने लगे। दक्षिण पंथियों का कहना था कि भारत में योजनागत विकास के अन्तर्गत निजी क्षेत्र को पर्याप्त स्वतंत्रता नहीं दी गयी जबकि वामपंथी सरकार की यह कहकर आलोचना कर रहे थे कि सरकार ने स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में जितना निवेश करना चाहिये वह नहीं किया है इसके अलावा सरकार ने गैर आकर्षक क्षेत्रों में भारी निवेश करके पूँजीपति वर्ग को मुनाफा कमाने में मदद की है। गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली बड़ी आबादी भी हमारी विकास की रणनीति पर प्रश्न चिन्ह

लगाने लगी।

नियोजित विकास के परिणाम–यद्यपि हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ आशा के अनुरूप परिणाम देने में असफल रही लेकिन इसके बावजूद इसकी कुछ उपलब्धियाँ निम्न प्रकार से हैं।

(i) कृषि और औद्योगिक विकास की नींव रखी।

(ii) भूमि सुधार के लिये विधायी और नीतिगत कई निर्णय लिये गये।

(iii) उत्कृष्ट शिक्षण संस्थानों जैसे आई. आई. टी., आई. आई. एम. जैसे संस्थानों की स्थापना।

(iv) हरित क्रान्ति–हरित क्रान्ति भी सरकार के सक्रिय सहयोग से ही सम्भव हो पायी। सरकार द्वारा पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में किसानों को रियायती दरों पर रासायनिक उर्वरक, उन्नत बीज, सिंचाई सुविधा तथा कृषि उपकरण उपलब्ध कराये गये। इसके परिणामस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई इसे हरित क्रान्ति का नाम दिया गया। यह एक बड़ा बदलाव था जिससे अमेरिका जैसे देशों पर हमारी खाद्यान्नों की निर्भरता लगभग समाप्त हो गयी।

हरित क्रान्ति के सकारात्मक प्रभाव–

(i) खाद्यान्नों के मामले में भारत आत्मनिर्भर हो गया।

(ii) किसानों की आय में वृद्धि, गरीबी उन्मूलन में सहायक।

(iii) नये उन्नत बीजों का विकास।

(iv) सिंचाई सुविधाओं का विस्तार।

हरित क्रान्ति के नकारात्मक प्रभाव–

(i) हरित क्रान्ति केवल पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रदेश तक ही सीमित रही देश के अन्य क्षेत्र इनकी तुलना में पिछड़े रह गये। इसने क्षेत्रीय असंतुलन को जन्म दिया।

(ii) रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बढ़ने से भौमजल-प्रदूषित हो गया साथ ही जमीन की उर्वरा शक्ति पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

(iii) सामाजिक-आर्थिक असमानता में बढ़ौतरी हुई क्योंकि इसका लाभ ज़्यादातर सम्पन्न वर्ग के किसानों ने उठाया।

(iv) यह क्रान्ति केवल खाद्यान्नों विशेषकर गेहूँ तक सीमित रही।

क्रियाकलाप–(II)-भारत में कई राज्य सूखे की मार झेल रहे हैं। फसलों के बर्बाद होने से किसान कर्जे के नीचे दबते जा रहे हैं तथा उनकी आत्महत्या की खबरे भी लगातार समाचारों में आती रहती है। समाचार पत्र, पत्रिकाओं व इंटरनेट के माध्यम से सूखाग्रस्त राज्यों में कृषि और किसानों की दशा पर आवश्यक जानकारियाँ एकत्रित कीजिए तथा समस्या के समाधान के उपाय भी सुझाइये।

बदलाव की आवश्यकता

1950 से लेकर 1980 के दशक तक भारत में औसत विकास की दर उसे 3.5 प्रतिशत रही। विकास की निम्न दर के कारण गरीबी उन्मूलन एक सपना बन कर रह गया। 1980 के दशक में विकास की रणनीति बदलने की आवाज मुखर होने लगी। 1991 में जाकर नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत सरकार ने नेहरूवादी समाजवाद को अलविदा कर नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीति अपनायी। लाइसेन्स और परमिट राज समाप्त करके निजी क्षेत्र और विदेशी निवेश को बढ़ावा दिया गया। पंचवर्षीय योजनायें अब भी बन रही है किन्तु अब उनका केन्द्र शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवायें होती है। अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व घट रहा है तथा निजी क्षेत्र की भूमिका लगातार बढ़ रही है। अर्थव्यवस्था में विकास की गति तो तेज हो गयी लेकिन आर्थिक असमानता आज भी एक बड़ी चुनौती है।

पाठगत अवधारणाएँ

नियोजित विकास–संसाधनों के आंकलन के पश्चात् सीमित समय में विकास के लक्ष्य प्राप्त करने की रणनीति

वामपंथी–समाजवादी विचारधारा से प्रेरित, अर्थव्यवस्था पर सरकार के नियंत्रण के पक्षधर।

दक्षिण पंथी–उदारवादी पूँजीवादी विचारधारा से प्रेरित, निजी क्षेत्र तथा अहस्तक्षेपी राज्य के समर्थकों को दक्षिण पंथी कहा जाता है, राजनीतिक महकमों में परम्परावादियों के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

अहस्तक्षेपी राज्य–ऐसा राज्य जो आर्थिक क्षेत्र में बिल्कुल भी हस्तक्षेप न करें। अर्थव्यवस्था को बाजार ताकतों अर्थात् माँग व पूर्ति पर छोड़ दें।

भूमि सुधार–जमीदारी उन्मूलन, लैंड सीलिंग व चकबन्दी कानूनों को सामूहिक रूप से भूमि सुधार के नाम से जाना जाता है।

महामंदी (1929-33)–विश्व व्यापी आर्थिक संकट जिसकी शुरूआत 1929 में संयुक्त राज्य अमेरिका से हुई तथा जल्दी ही इसने पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया को महामंदी (Great Depression) के नाम से जाना जाता है।

मूल्य संवर्धन–इस पाठ को पढ़ने से छात्रों में अनुशासित रहने, जीवन में लक्ष्य निर्धारित करने तथा योजना बनाकर निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के गुण विकसित होगें।

प्र.1. नियोजित विकास को परिभाषित कीजिए। (1)

प्र.2. योजना आयोग की स्थापना कब हुई? (1)

प्र.3. महामंदी क्या थी? (1)

प्र.4. बाम्बे प्लान की व्याख्या कीजिए। (2)

प्र.5. प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजना किन अर्थशास्त्रियों की सलाह पर तैयार की गई थी। दोनों में मुख्य अन्तर क्या था? (2)

प्र.6. प्रथम पंचवर्षीय योजना की चार प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (4)

प्र.7. दिये गये.....(Bar Graph) के आधार पर प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

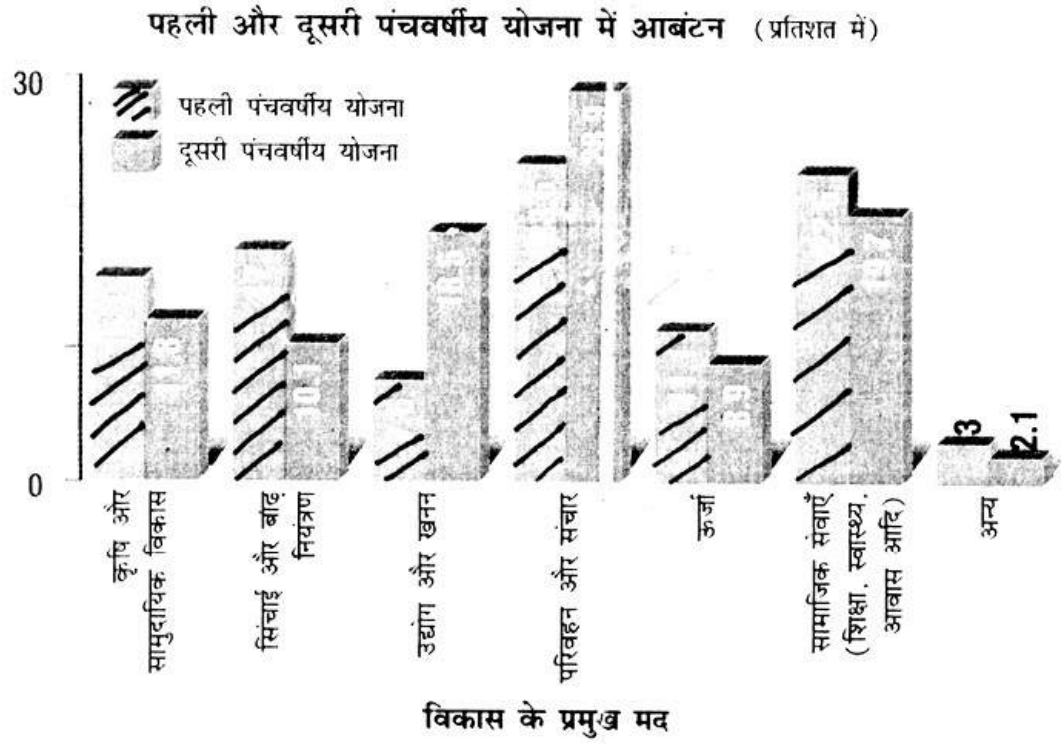

प्र.7. (i) प्रथम पंचवर्षीय योजना में किस मद में सर्वाधिक आबंटन किया गया? (1)

प्र.7. (ii) किस क्षेत्र (मद) को द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पहली योजना की तुलना में दोगुने से भी अधिक बजट आबंटित किया गया? (1)

प्र.7. (iii) बजट आबंटन के आधार पर प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं की प्राथमिकताओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए। (3)

प्र.8. 1980 के दशक में भारत की अर्थव्यवस्था में किए गए बदलावों को स्पष्ट कीजिए तथा इसका एक सकारात्मक और एक नकारात्मक प्रभाव लिखिए।

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करने से पहले न्याय की संकल्पना को जानना आवश्यक है। जब से मानव समाज ने सामाजिक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया तभी से न्याय समाज को व्यवस्थित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। वास्तव में न्याय की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, किन्तु हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जो वस्तु वास्तव में कानून, अधिकारों, स्वतंत्रता, बंधुता या सहयोग तथा समानता के मूल भावों को परस्पर जोड़ती है, वही न्याय कहा जा सकता है।

न्याय के अध्ययन के अधिगम परिणाम

1. न्याय के विविध सिद्धान्तों को पहचानने व समझने में सक्षम होंगे।

2. वितरणात्मक न्याय की संकल्पना को समझ सकेंगे।

3. न्याय की प्राचीन भारतीय व पाश्चात्य अवधारणाओं को समझने में सक्षम होंगे।

4. जान रॉल्स के वितरणात्मक न्याय की अवधारणा का बोध कर सकेंगे।

5. मुक्त बाज़ार बनाम राज्य के हस्तक्षेप में न्याय को स्थापित करना समझ सकेंगे।

6. सामाजिक न्याय की स्थापना में आरक्षण के महत्त्व को समझ सकेंगे।

न्याय शब्द की उत्पत्ति एवं परिभाषा–

न्याय शब्द अंग्रेजी भाषा के जस्टिस (Justice) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। जो लैटिन भाषा के 'जस' (Jus) शब्द से बना है इसका अर्थ है 'बन्धन अथवा बाँधना'। इस प्रकार न्याय समाज की एक जटिल अवधारणा के रूप में स्थापित हुआ, न्याय को स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने कहा–

कन्फ्यूशस के अनुसार–''गलत करने वालों को दण्डित करना और श्रेष्ठ लोगों को पुरस्कृत करना ही न्याय की स्थापना है''

सालमण्ड के अनुसार–''न्याय का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति को उसका भाग प्रदान करना है''

न्याय की अवधारणा का विकास

1. भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्याय–प्राचीन भारतीय समाज में न्याय 'धर्म' के साथ जुड़ा हुआ था और धर्म या न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था कायम रखना राजा का प्रथम कर्त्तव्य माना जाता था। प्राचीन भारतीय चिन्तन की विशेषता यह रही कि भारत में उस काल में ही न्याय की उस कानूनी धारणा को स्वीकार किया जो पाश्चात्य दार्शनिकों ने आधुनिक काल में दी है मनु, बृहस्पति, शुक्र, सोमदेव व कौटिल्य ऐसे ही चिन्तक थे।

2. पाश्चात्य चिन्तन में न्याय–ईसा पूर्व चौथी सदी के एथेंस (यूनान) में प्लेटो ने अपनी पुस्तक ''द रिपब्लिक'' में सुकरात की द्वन्द्वात्मक पद्धति की चर्चा करते हुए न्याय की स्थापना के कुछ तर्क स्थापित किये।

प्लेटो के अनुसार यूनान में न्याय की मुख्य तीन अवधारणाए विद्यमान थीं। एक बार सुकरात ने अपने शिष्यों से पूछा कि हमारा न्याय से क्या सरोकार होना चाहिए तो उनके उत्तर इस प्रकार थे–

न्याय के सिद्धान्त	प्रतिपादक	प्रतिपादित विषय
1. परम्परावादी सिद्धान्त	सिफलस तथा पोलिमार्कस	अपना कर्ज चुकाना तथा शत्र के साथ शत्रुता और मित्र कु साथ मित्रता न्याय है।
2. उग्रवादी सिद्धान्त	थ्रेसीमेकस	शक्तिशाली का हित न्याय है।
3. अनुभववादी सिद्धान्त	ग्लॉकान	दुर्बल का हित न्याय है।

प्लेटो ने तीनों सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए न्याय शब्द का प्रयोग नैतिक अर्थ में किया है। उसने न्याय के दो रूप बताए है।

1. व्यक्तिगत न्याय 2. सामाजिक न्याय

उसके अनुसार मानवीय आत्मा के तीन तत्व हैं इन तत्वों पर आधारित राज्य के भी तीन वर्ग है।

आत्मा के तत्व	बुद्धि	शौर्य	इन्द्रिय तृष्णा
राज्य के तत्व	शासक वर्ग	सैनिक वर्ग	उत्पादक वर्ग

प्लेटो के अनुसार व्यक्ति की आत्मा के तत्व यदि अपने-अपने कर्त्तव्यों का सत्यनिष्ठा से पालन करेगें तभी न्याय स्थापित होगा अन्यथा समाज में अन्याय रहेगा क्योंकि बुद्धिमान का कार्य शासन करना है और यदि इन्द्रिय तृष्णा वाला उत्पादक वर्ग शासन करेगा तो न्याय कैसे स्थापित होगा। प्लेटो के अनुसार सभी समाजों में बुद्धिमानों की संख्या कम होती है और उत्पादकों की संख्या अधिक। लोकतन्त्र में बहुमत का शासन होने के कारण उत्पादक वर्ग शासन करता है इस कारण लोकतन्त्र में न्याय स्थापित नहीं हो पाता।

प्लेटो की न्याय की व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि न्याय का तात्पर्य आत्मा के तत्वों के गुणों के आधार पर कर्त्तव्यों का विभाजन होना चाहिए तभी न्याय स्थापित होगा। किन्तु वैश्वीकरण के इस युग में प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थिति में परिवर्तन के कारण वितरणात्मक न्याय की समस्या उभर आयी है तथा पूँजीवादी समाज में गरीब और अमीर के बीच की खायी में वृद्धि हुई है। इसके समाधान के लिए जॉन रॉल्स नामक विद्वान ने न्याय का नया सिद्धान्त विकसित किया।

रॉल्स का वितरणात्मक न्याय सिद्धान्त–(Rawls' Theary of Distributive Justice)–

जॉन रॉल्स उदार लोकतन्त्रवादी था। उसने अपने ग्रन्थ ''ए थ्योरी ऑफ जस्टिस'' (A Theory of Justice) में न्याय के जिस सिद्धान्त का विवेचन 1971 में किया उसके माध्यम से उसने एक और उदार लोकतन्त्र का समर्थन किया तथा दूसरी और उसने समाज के दुर्बल वर्ग के हितों को संरक्षण प्रदान किया। उसने पूँजीवादी और साम्यवादी दोनों शासन व्यवस्थाओं की हो रही आलोचनाओं के साथ विकासशील देशों में लोकतन्त्र की जड़ों को हिलते हुए देखा। इस परिस्थिति में उदार लोकतंत्र की रक्षा करने का भार रॉल्स के अपने कन्धों पर उठाया। जॉन रॉल्स ने वितरणात्मक न्याय की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

न्याय की समस्या

प्राथमिक वस्तुओं के वितरण की समस्या–जॉन रॉल्स के अनुसार प्राथमिक वस्तुएँ हैं अधिकार तथा स्वतन्त्रताएँ (Rights and Liberties), आय और सम्पदा (Income and wealth) शक्तियाँ और अवसर (Powers and Opportunities), आत्मसम्मान (Self Respect) आदि। रॉल्स ने अपने न्याय को शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की संज्ञा प्रदान की। उसने उपयोगितावाद का खण्डन किया। रॉल्स के अनुसार सुखी लोगों के सुख को कितना ही क्यों न बढ़ा दिया जाए किन्तु उससे दु:खी लोगों के दु:ख का हिसाब बराबर नहीं किया जा सकता। अत: उपरोक्त प्राथमिक वस्तुओं का वितरण न्यायपूर्ण हो जिसमें सामान्यत: कोई छूट तभी दी जा सकती है जब यह सिद्ध हो जाए कि इसमें निम्नतम व्यक्ति को अधिकतम लाभ सम्भव होगा।

रॉल्स का अज्ञानता के आवरण का सिद्धान्त अथवा सामाजिक अनुबन्ध की तर्क प्रणाली–रॉल्स ने न्याय की सर्वसम्मत और विश्व व्यापी काल्पनिक तर्क प्रणाली का सहारा लेते हुए कहा कि मानों मनुष्य अज्ञानता के पर्दे के पीछे बैठे है जिससे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं, हितों, निपुणताओं, योग्यताओं आदि से बिल्कुल अनिभिज्ञ होते हैं। वे यह भी नहीं जानते की समाज में कौन-कौन सी बातें संघर्ष पैदा करती है किस किस्म के परिवार में हम जन्म लेगें, उच्च जाति के परिवार में पैदा होगें या निम्न जाति में, धनी होगें या गरीब, सुविधासम्पन्न होगें या सुविधाहीन। उन्हें यह पता भी हो कि वे श्वेत अश्वेत है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि उन्हें समाज में बरते जाने वाले भेदभाव का पता नहीं होगा परन्तु उन्हें अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का आरम्भिक ज्ञान होगा और न्याय का बोध भी होगा।

अज्ञानता के पर्दे के पीछे नैतिकता के विचार से जुड़े कुछ प्रतिबन्ध अवश्य लगे होगें। रॉल्स ने मूल स्थिति के इन मनुष्यों को 'विवेकशील कर्त्ता' की संज्ञा अवश्य दी जो न्याय के नियमों का पता लगाने के लिए तथा परस्पर सहमति पर पहुँचने के लिए एकत्र हुए है। उनका सरोकार अपने-अपने लिए प्रारम्भिक वस्तुओं की अधिकतम वृद्धि से है। दूसरों को ये वस्तुएँ कितनी मात्रा में मिलती है। इससे उन पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

ऐसे हालात में कोई मनुष्य जोखिम उठाने और जुआ खेलने के लिए तैयार नहीं होगा न उन्हें यह पता होगा कि उन्हें कितना दॉव लगाना है। इस अनिश्चितता कि स्थिति में वे सबसे कम खतरनाक रास्ता चुनेगें।

रॉल्स के अनुसार नैतिकता नहीं बल्कि विवेकशील चिन्तन हमें समाज में लाभ और भार के वितरण के मामले में निष्पक्ष होकर विचार करने की और प्रेरित करता है। हमारे लिए सबसे अच्छा क्या है? यह निर्धारित करने के लिए हम स्वतन्त्रता होते हैं। यही विश्वास रॉल्स के सिद्धान्त को निष्पक्ष न्याय के प्रश्न को हल करने का श्रेष्ठ समाधान प्रस्तुत करता है।

न्याय का मूल सिद्धान्त होगा कि आय का दरिद्र के हित में या हीनतम स्थिति वाले को अधिकतम लाभ–

जब मूल स्थिति की उपरोक्त शर्ते पूरी हो जाएगीं तो कोई भी वार्ताकार कोई जोखिम नहीं उठाएगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को शंका रहेगी कि कहीं यथार्थतर सामने आने पर वह अपने को हीनतम स्थिति में न पाए और प्रत्येक व्यक्ति माँग करेगा कि जो हीनतम स्थिति में है उसे अधिकतम मिलना

चाहिए इस कारण सब लोग न्याय के निम्नलिखित नियमों को स्वीकार कर लेगें।

रॉल्स के न्याय के नियम

समान स्वतन्त्रता का सिद्धान्त	प्रत्येक व्यक्ति को सबसे विस्तृत स्वतन्त्रता का ऐसा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए जो दूसरों की वैसी ही स्वतन्त्रता के साथ निभा सकता हो।
भेद मूलक सिद्धान्त	इसमें सबसे हीनतम स्थिति वाले को अधिकतम लाभ हो।
अवसर की उचित समानता	ये विषमताएँ उन पदों और स्थितियों के साथ जुड़ी हो जो अवसर की उचित समानता का सिद्धान्त की शर्तो पर सबके लिए सुलभ हो।

समान स्वतन्त्रता का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति को सबसे विस्तृत स्वतन्त्रता का ऐसा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए जो दूसरों की वैसी ही स्वतन्त्रता के साथ निभा सकता हो।

भेद मूलक सिद्धान्त इसमें सबसे हीनतम स्थिति वाले को अधिकतम लाभ हो।

अवसर की उचित समानता ये विषमताएँ उन पदों और स्थितियों के साथ जुड़ी हो जो अवसर की उचित समानता का सिद्धान्त की शर्तो पर सबके लिए सुलभ हो।

न्याय के अन्य नियम

समान लोगों के प्रति समान बरताव–आज के उदारवादी जनतन्त्रों में नागरिकों को अनेक अधिकार प्राप्त हैं जिनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकार शामिल है। किन्तु इनके अलावा समान लोगों के प्रति समान बरताव के लिए जाति, लिंग, वर्ग, नस्ल आदि के आधार पर भेदभाव न किया जाए जैसे-चाहे गार्ड हो या ड्राइवर जाति के आधार पर वेतन में भेदभाव न किया जाए चाहे महिला हो या पुरूष समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए।

समानुपातिक न्याय–इस न्याय में लोगों को उनकी मेहनत, योग्यता और प्रयासों के आधार पर पुरस्कृत किया जाता है।

मुक्त बाज़ार बनाम राज्य का हस्तक्षेप –मुक्त बाज़ार के समर्थक मानते हैं कि व्यक्ति को सम्पत्ति अर्जित करने के लिए स्वतन्त्र रहना चाहिए राज्य इसमें कम से कम हस्तक्षेप करें तो बाज़ार में होने वाला कारोबार का योग कुल मिलाकर समाज में लाभ और कर्त्तव्यों का वितरण सुनिश्चित करेगा।

किन्तु इसके भी दोष है यह केवल सुविधा सम्पन्न और प्रतिभावान लोगों को लाभ पहुँचाएगा और अमीर और गरीब के मध्य खाई उत्पन्न कर देगा। इसलिए राज्य को यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि समाज के तमाम सदस्यों की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूर्ण हो।

सामाजिक न्याय का पक्ष तथा न्यायपूर्ण बंटवारा–सामाजिक न्याय का अर्थ है ऐसी सामाजिक व्यवस्था का होना जिसमें बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति को समाज में समान अवसर और सुख सुविधा उपलब्ध हो। धर्म, जाति, लिंग, रंग, जन्मस्थान, अमीरी, गरीबी, वंश इत्यादि के आधार पर किसी को समाज में नीचा न देखना पड़े और न ही इन आधारों पर समाज में व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में रूकावट आएँ। सामाजिक न्याय का प्रश्न सामाजिक न्याय केवल ऐसी सामाजिक व्यवस्था में मिल सकता है जहाँ आर्थिक शोषण न हो। जहाँ वर्ग विभाजन न हो, जहाँ कुछ लोगों के हाथ में समाज के सारे उत्पादन के साधन न हों। जहाँ निर्धन जन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने को बेचने को मजबूर न हों।

इस प्रकार सामाजिक न्याय का आदर्श लोगों के कल्याण को बढ़ावा देकर ऐसी सामाजिक व्यवस्था लाने को प्रोत्साहित करता है जिसमें सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की संस्थाओं को समृद्ध करें।

सामाजिक न्याय का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

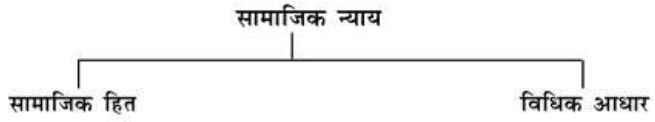

1. सामान्य सुरक्षा में शान्ति व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अभिग्रहित वस्तुओं की सुरक्षा बनी रहे।	1. अन्य लोगों द्वारा मनमाना आक्रमण न किया जाए
2. सामाजिक संस्थाओं में-विवाह, धार्मिक संस्थाएं आदि।	2. जिन पक्षों के साथ लेन देन किया जाए वे सत्यनिष्ठा से कार्य करें।

3. सामान्य नैतिक मानकों में-जुआ, मद्यपान, मनुष्यों के अनैतिक क्रय विक्रय का निषेध	3. किसी को अर्जित वस्तुओं और उनके उपयोग में कोई रूकावट नहीं।
4. सामाजिक संसाधनों का संरक्षण जैसे-खाद्य सामग्री, खनिज आदि	4. व्यक्तियों को अनुचित जोखिम न उठाने देना और सावधानी पूर्वक कार्य करने की चेतावनी देना
5. सामान्य प्रगति में-व्यापार की स्वतन्त्रता, शोध को प्रोत्साहित करना आदि।	5. किसी अन्य द्वारा रखी गयी खतरनाक वस्तुओं को सावधानीपूर्वक उनकी सीमाओं के भीतर रखा जाना
6. व्यक्तिगत अधिकारों में मजदूरी, काम करने की परिस्थितियाँ, न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति आदि।	6. कार्मिक को रोजगार का अधिकार देना।
	7. यदि मनुष्य पर कोई विपत्ति आती है तो समाज उसका साथ दे
	8. औद्योगिक समाज में आवश्यक मानवीय क्षति की स्थिति में उचित मुआवजा दिया जाना

भारतीय संविधान द्वारा प्रदान की गयी सामाजिक न्याय की व्यवस्था

भारतीय संविधान की अन्तरात्मा न्याय, समता, अधिकार और बन्धुत्व के सिद्धान्तों से परिपूर्ण है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय संविधान की श्रेष्ठ महत्वाकांक्षाओं में से एक है। हमारें संविधान की प्रस्तावना में न्याय को विशेष रूप में उल्लिखित किया गया है। संविधान निर्माता इससे परिचित थे कि सच्चे लोकतंत्र की स्थापना में स्वतन्त्रता और समानता के अतिरिक्त सामाजिक न्याय अनिवार्य है। न्याय के द्वारा ही लोकहित की वृद्धि हो सकती है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्थापना का प्रयास करना राज्य का पवित्र कर्त्तव्य माना गया है।

सामाजिक न्याय का अभिप्राय है मानव-मानव के बीच में जाति, वर्ग के आधार पर भेद न माना जाए और प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समुचित अवसर सुलभ हो संविधान के तीसरे भाग (मौलिक अधिकार) और चौथे भाग (राज्य की नीति के निदेशक तत्व) में सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए विविध उपायों का उल्लेख किया गया है।

1. अनुच्छेद 14 में भारत के सभी नागरिकों को कानून के सामने समानता और कानूनों से समान सुरक्षा प्रदान की गयी है।

2. अनुच्छेद 15 में धर्म, मूल, वंश, जाति या लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव की मनाही है।

3. अनुच्छेद 16 में सरकारी नौकरियों के लिए अवसर की समानता इसके साथ ही राज्य सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

5. अनुच्छेद 23 और 24 में बेगार व शोषण का अन्त कर दिया गया।

सामाजिक न्याय की पूर्ण प्राप्ति के लिए आर्थिक और राजनैतिक न्याय की प्राप्ति भी अनिवार्य है। इसी उद्देश्य को लेकर संविधान निर्माताओं ने राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में इन्हें प्राप्त करने के निर्देश दिये हैं।

1. राज्य प्रत्येक स्त्री और पुरूष को समान रूप से जीविका के साधन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा तथा समान कार्य के लिए समान मजदूरी प्रदान करेगा।

2. राज्य प्रयत्न करेगा कि देश के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियन्त्रण की व्यवस्था ऐसी करेगा जिससे अधिक से अधिक सार्वजनिक हित हो सके।

3. राज्य स्त्री पुरूषों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग नहीं होने देगा।

4. राज्य अपनी सीमाओं के अन्दर सभी नागरिकों को काम का अधिकार सुनिश्चित करेगा ताकि बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंगहीनता आदि दशाओं में सामाजिक सहायता प्राप्त कर सके।

5. संविधान द्वारा सामाजिक समानता लाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है जिसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों तथा सवैधानिक संस्थाओं में आरक्षण का प्रावधान है।

6. महिलाओं को ग्राम पंचायतों तथा शहरी निकायों में 33% आरक्षण दिया गया है।

इसी सामाजिक समानता व न्याय के लिए संविधान संशोधनों से विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के अधिकार छीने गए। सामन्तवादी एवं जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। सम्पत्ति के परम्परावादी अधिकार को आर्थिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में सीमित किया गया ताकि कमजोर वर्ग के शोषण को रोककर समतावादी समाज का निर्माण हो सके।

इस प्रकार सामाजिक न्याय-न्याय की ऐसी अवधारणा है जिसमें राजनैतिक, आर्थिक कानूनी न्याय आदि समाहित हो जाते हैं विभिन्न विद्वानों तथा संविधान विशेषज्ञों और संविधान में दिये गए प्रावधानों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न्याय की स्थापना के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और आत्मगुण के अनुसार कार्य करें तथा राज्य के नियन्त्रण द्वारा धर्म, मूल, वंश, जाति, वर्ग पर आधारित भेदभाव को समाप्त किया जाए तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति या प्रत्येक व्यक्ति को उसका प्राप्य देने की व्यवस्था हो इसी से सामाजिक न्याय की स्थापना होगी। सुकरात, प्लेटो, जॉन रॉल्स आदि विद्वानों द्वारा इसी सन्दर्भ में अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किए। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अनेक प्रावधान स्थापित किए गए हैं।

संवर्धित मूल्य

1. न्याय समाज और राज्य का आधार है बिना न्याय के मत्स्य शासन अथवा जंगल राज स्थापित होगा और मानव-मानव न रहकर जंगली जानवर की तरह होगा इसलिए सभी को न्याय की अवधारणा का संवर्धन करना चाहिए।

2. धर्म, मूल, वंश, जाति, वर्ग पर आधारित भेदभाव की सामाजिक न्याय द्वारा समाप्ति होगी और समाज में समरसता और भातृत्व की भावना का विकास होगा

3. कमजोर और असहाय वर्ग के लिए सामाजिक न्याय वरदान है जिससे सामाजिक समृद्धि में वृद्धि होगी

4. प्रत्येक व्यक्ति अपने आत्मगुणों और प्रतिभा के अनुसार कार्य करने को तत्पर होगा।

5. भारतीय संविधान में दिये गए सामाजिक न्याय के प्रावधानों पर विश्वास बढ़ेगा और संवर्द्धन होगा।

पाठ्यगत अवधारणाएं

1. अवधारणा—कोई नियम या सिद्धान्त

2. परम्परा—प्राचीन काल से चला आ रहा कोई नियम

3. उन्मूलन—जड़ से उखाड़ना या पूर्ण रूप से नष्ट करना

4. दरकिनार—किसी वस्तु या विचार को छोड़ना या अलग होना

5. कसौटी—किसी वस्तु की प्रमाणिकता और अप्रमाणिकता जानने का साधन

6. अप्रतिबन्धित—जिस पर कोई रोक न लगायी गयी हो

7. द्धन्द्धात्मक पद्धति—वाद, प्रतिवाद व संवाद

न्याय

कुछ गद्य में कुछ पद्य में

न्याय का क्या अर्थ है? प्रश्न है एक राज का।

पशु से मानव बनने तक शब्द होता हर आवाज़ का।।

न्याय ही एक डोर है हर क्षण बदलते मिज़ाज़ का।

न्याय ही वह शक्ति जो बन्धन है समाज का।।

न्याय के ही भय से तो प्रेम बढ़ता सर्प और बाज का।

किन्तु कैसे मिले सच्चा न्याय यह करूण क्रन्दन आज का।।

ईमानदार को मिले सजा तो होता न्याय बदनाम है।

सुकरात, प्लेटो, जॉन रॉल्स ये सब न्याय के विद्वान है।।

कोई किसी का करें न शोषण बताते राज्य के ये काम है।

न्याय को ही प्राप्त करने बना भारत का संविधान है।।

न्याय से ही जग है रोशन वरना रहती शाम है।

न्याय से ही स्वर्ग मिलता वरना नरक धाम है।।

न्याय की स्थापना ही UNO का प्राण है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब न्याय के ही नाम है।।

आकंलन मूल्यांकन (अपेक्षित प्रश्न)

एक अंकीय प्रश्न

1. न्याय शब्द की उत्पत्ति किस भाषा के किस शब्द से हुई है?

2. किसी एक विद्वान की न्याय की परिभाषा लिखिए।

3. प्लेटो द्वारा वर्णित न्याय के दो प्रकार लिखिए।

दो अंकीय प्रश्न

1. भारतीय दर्शन के अनुसार न्याय की दो विशेषताएँ लिखिए।

2. सामाजिक न्याय की स्थापना की चार परिस्थितियाँ लिखिए।

छः अंकीय प्रश्न

1. वितरणात्मक न्याय की अवधारणा की व्याख्या जॉन रॉल्स के दृष्टिकोण के सन्दर्भ में कीजिए।

पाठ-6

जन आन्दोलनों का उदय

परिचय

जन आन्दोलनों का उद्देश्य सामाजिक आर्थिक न्याय प्राप्त करना है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज में सामाजिक न्याय पाने के लिए सरकार को यह सुनिश्चित करना होता है कि कानून व नीतियाँ सभी व्यक्तियों पर निष्पक्ष रूप से लागू हो और समाज में वस्तुओं व सेवाओं का न्यायोचित वितरण हो। चाहे यह राष्ट्रों के बीच वितरण का मामला हो या किसी समाज के अन्दर विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के बीच का।

जब लोकतांत्रिक सरकारें सामाजिक न्याय की स्थापना व समय के साथ उपजी चुनौतियों का मुकाबला करने में असफल होती है, तब जन आन्दोलन का ही विकल्प मात्र बचता है।

सम्पूर्ण विश्व में आन्दोलन व विरोध को लोकतांत्रिक व्यवस्था का भाग समझा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इससे लोकतंत्र मजबूत होता है। क्योंकि इन आन्दोलनों से सरकार को लोगों की माँगों व अपनी कमजोरियों का पता चलता है, जिन्हें सुधारकर वह लोगों को संतुष्ट कर सकती है।

इस अध्याय के माध्यम से जन आन्दोलन का अर्थ, उनकी प्रकृति और दलीय व गैर-दलीय जन आन्दोलन में अंतर को समझने में सहायता मिलेगी। इसके अलावा गैर दलीय आन्दोलनों के उदय की परिस्थितियों को समझ सकेंगे। इस अध्याय में विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से लोगों की माँगों, आवश्यकताओं व उपलब्धियों के बारे समझने में मद्द मिलेगी।

जन-आन्दोलन से तात्पर्य

जन-आन्दोलन एक निश्चित समय में चलने वाली कार्यवाही होती है, जो सरकार को किसी नीति या कार्यक्रम को बदलने अथवा प्रभावी तरीके से

लागू करने की माँग करती है। सामान्यतय ये आन्दोलन राजनीतिक अथवा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए किए जाते हैं। परन्तु कभी-कभी इन आन्दोलनों का उद्देश्य परिवर्तन की प्रक्रिया को रोकना होता है।

किसी भी जन आन्दोलन के सामान्यतया निम्न तत्व होते हैं–

(i) जन भागीदारी–यह भागीदारी स्वयंसेवी समूह द्वारा हो सकती है।

(ii) एक विशेष लक्ष्य या उद्देश्य–जिसे प्राप्त करने के लिए ये संगठित होते हैं।

(iii) एक विशेष लक्ष्य या उद्देश्य को पाने के लिए कार्यवाही। यह कार्यवाही धरना, प्रदर्शन, आमरण अनशन अथवा जन जागृति अभियान आदि के रूप में होती है।

इसके अतिरिक्त चूँकि कोई भी जन आन्दोलन व्यवस्था के प्रति असन्तोष से उत्पन्न होता है। उपजे असंतोष का कारण चाहे व्यवस्था से परिवर्तन की माँग हो या संभावित परिवर्तन को रोकने का पक्षधर हो। इसलिए 'असंतोष' जन आन्दोलन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्व है।

जन आन्दोलन की प्रकृति व प्रकार

1970 के दशक में विभिन्न सामाजिक वर्गों जैसे-महिला छात्र, किसान, दलित तथा पर्यावरण प्रेमी आदि को लग रहा था कि लोकतांत्रिक राजनीति उनकी जरूरतों और माँगों पर ध्यान नहीं दे रही है। इसी प्रकार विकास की बड़ी परियोजनाओं के कारण पर्यावरण व पुर्नवास और स्वच्छता जैसे मुद्दे उभरे। इसके चलते ये समूह अपनी आवाज बुलन्द करने के लिए विभिन्न सामाजिक संगठनों के झंडे के नीचे एकजुट हुए व अपनी माँगों व चिन्ताओं को अभिव्यक्त किया। इस प्रकार आन्दोलनों की प्रकृति बहुआयामी तथा विविध रही।

जन आन्दोलन कभी सामाजिक तो कभी राजनीतिक आन्दोलन का रूप ले सकते हैं और अवसर ये आन्दोलन दोनों ही रूपों के मेल से बने नजर आते हैं। उदाहरण के लिए आज़ादी के बाद शुरूआती सालों में तेलंगाना क्षेत्र के किसान कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व मे लामबन्द हुए। इन्होंने काश्तकारों के बीच जमीन के पुर्नवितरण की माँग की। आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल व बिहार के कुछ भागों में किसान तथा खेतिहर मजदूरों ने 1969 में मार्क्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के नेतृत्व में अपना विरोध जारी रखा। मार्क्सवादी-लेनिनवादी समूहों को नक्सलवादी के नाम से जाना गया। किसान और मजदूरों के आन्दोलन का मुख्य जोर आर्थिक अन्याय तथा असमानता के मसले पर रहा। ऐसे आन्दोलनों ने औपचारिक रूप से चुनावों में भाग नहीं लिया लेकिन राजनीतिक दलों से इनका नजदीकी रिश्ता बना रहा। ऐसे आन्दोलन 'दलीय आन्दोलन' कहलाते हैं।

70 व 80 के दशक में समाज के कई तबकों का राजनीतिक दलों के आचार-व्यवहार से मोहभंग हुआ जिसके कई कारण हैं–

(i) जनता पार्टी के रूप में असफल गैर कांग्रेसवाद के प्रयोग के कारण राजनीतिक अस्थिरता का माहौल कायम हुआ।

(ii) नियोजित विकास का मॉडल अपनाने के बावजूद आर्थिक विकास की दर निम्न रही और आर्थिक असमानता बनी रही।

(iii) आर्थिक विकास का लाभ समाज के हर तबके को बराबर नहीं मिला

(iv) जाति व लिंग पर आधारित सामाजिक असमानताओं ने गरीबी के मसले को और भी जटिल बना दिया।

(v) शहरी औद्योगिक तथा ग्रामीण कृषि क्षेत्रों के बीच अन्तर बना रहा।

उपरोक्त कारणों से विभिन्न प्रभावित समूहों का लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा चुनावी राजनीति से विश्वास उठने लगा। इन्होंने दलित, आदिवासी व प्रकृति प्रेमी समूहों को लामवन्द करना शुरू किया। मध्यवर्ग के युवा कार्यक्रम तथा सेवा-संगठन चलाये। इन संगठनों को स्वतंत्र राजनीतिक संगठन कहा गया। इन संगठनों का मानना था कि स्थानीय मसलों के समाधान में स्थानीय नागरिकों की सीधी और सक्रिय भागीदारी राजनीतिक दलों की अपेक्षा ज्यादा कारगर होगी तथा सरकार की प्रकृति में सुधार आयेगा।

ऐसे स्वयंसेवी संगठन आज भी सक्रिय हैं। इनमें से कुछ का वित्त पोषण विदेश एजेन्सियाँ करने लगी हैं। जिससे स्थानीय पहल का आदर्श कुछ कमजोर हुआ है।

दलित आन्दोलन : दलित पैंथर्स

70 के दशक में शिक्षित दलितों की पहली पीढीं ने अपने हक की आवाज उठाई। कुछ शिक्षित दलित युवकों ने 1972 में जाति आधारित असमानता और भौतिक साधनों के मामलों में अपने साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ दलित पैंथर्स नामक संगठन की स्थापना की। दलित पैंथर्स का बृहत्तर विचारधारात्मक एजेंडा जाति प्रथा का समाप्त करना तथा भूमिहीन गरीब किसान, शहरी औद्योगिक मजदूर और दलित सहित सारे वंचित वर्गों का एक संगठन खड़ा करना था। इनकी मुख्य माँग थी कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूरी तरह लागू किया जाये। इन्होंने आरक्षण के कानून तथा सामाजिक न्याय की नीतियों को कारगर तरीके से क्रियान्वित करने पर बल दिया।

दलित पैंथर्स ने दलितों पर हो रहे अत्याचार के मुद्दे पर विरोध आन्दोलन चलाया। परिणाम स्वरूप सरकार ने 1989 में एक व्यापक कानून बनाया। इस

कानून के अन्तर्गत दलित पर अत्याचार करने वाले के लिये कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया।

इस आन्दोलन से पढ़े-लिखे युवकों को एक मंच मिला। जहाँ वे अपनी सृजनशीलता का उपयोग प्रतिरोध की आवाज बनाकर कर सकते थे। इस दौर में अनेक आत्मकथाएँ तथा अन्य साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। रचनाओं में दलित लेखकों ने जाति प्रथा का जबरदस्त विरोध किया। आपातकाल (1975-1977) के बाद दलित पैंथर्स ने चुनावी समझौते किये। तत्पश्चात् इनमें विभाजन हुआ और यह संगठन राजनैतिक पतन का शिकार हो गया। इस संगठन का स्थान वैकवर्ड एण्ड माइनोरिटी इम्पलाइज फेडरेशन (वामसेफ) ने ले लिया।

किसान आन्दोलन : भारतीय किसान यूनियन

1970 के दशक में हरित क्रान्ति का लाभ सम्पन्न किसानों तक सीमित रहा। बावजूद इसके 80 के दशक में अपेक्षाकृत धनी किसानों ने सरकार की नीतियों का विरोध किया। इस विरोध का नेतृत्व उत्तर भारत में 'भारतीय किसान यूनियन' नामक संगठन ने किया। इस संगठन ने गन्ने और गेहूँ के सरकारी खरीद-मूल्य में बढ़ोत्तरी, कृषि उत्पादों के अन्तर्राज्यीय आवाजाही पर लगी पावन्दियाँ हटाने, समुचित दर पर गारन्टी शुदा बिजली आपूर्ति करने, किसानों के बकाया कर्ज माफ करने तथा किसानों के लिए पेंशन का प्रावधान करने की माँग रखी।

सरकार पर अपनी माँगों को मंगवाने के लिए दबाव डालने के क्रम में भारतीय किसान यूनियन ने रैली, धरना, प्रदर्शन और जेल भरो आन्दोलन का सहारा लिया। भारतीय किसान यूनियन ने जो लामबन्दी की, उनका एक नया पक्ष यह था कि इनमें किसानों के जातिगत जुड़ाव का इस्तेमाल किया गया। इस संगठन के अधिकांश सदस्य एक खास समुदाय के थे। इसने जातिगत समुदायों को आर्थिक मसले पर एकजुट करने के लिए जाति पंचायत की परंम्परागत संस्था का उपयोग किया। इनका यह आन्दोलन अपनी दो माँगे फसलों के समर्थन मूल्य में बढ़ोत्तरी व बिजली की दरों में कटौती तुरन्त मनवाने में कामयाब रहा। ऐसी माँगें देश के अन्य किसान संगठनों ने उठाई। महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने किसानों के किसानों के आन्दोलन को ''इंडिया'' की ताकतों (यानी शहरी औद्योगिक क्षेत्र) के खिलाफ ''भारत'' की ताकतों (यानि ग्रामीण कृषि क्षेत्र) का संग्राम करार दिया। आज भी किसान सूखा, उत्पादन लागत में बढ़ोत्तरी और कर्ज के जाल के कुचक्र में फंसकर आत्म हत्या को मजबूर है।

महिला अधिकार आन्दोलन : ताड़ी विरोधी आन्दोलन

90 के दशक में आन्ध्र प्रदेश में शराब माफियाओं के खिलाफ चलाया गया महिलाओं का आन्दोलन था। यह आन्दोलन साक्षरता अभियान से शुरू होकर राजनीतिक प्रतिनिधित्व में आरक्षण तक पहुँचा।

90 के दशक के शुरूआत में आन्ध्रप्रदेश के नैल्लौर जिले के एक दूरदराज के गाँव दुबरगंटा में महिलाओं के बीच प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया। इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भागीदारी की । कक्षाओं में महिलाओं आपस में घर के पुरूषों द्वारा नशे की लत की शिकायत करती थीं। शराब की गहरी लत के कारण पुरूष शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर हो गये थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही थी। कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा था। पुरूष अपने काम से लगातार गैर हाजिर रहने लगे थे। परिणामतय बच्चों की शिक्षा व स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ने लगा। घर की आर्थिक हालात बिगड़ने लगे। परिवार में तनाव व झगड़े का वातावरण पैदा हो गया। कुल मिलाकर शराबखोरी का सर्वाधिक दुष्परिणाम घ ार की महिलाओं व बच्चों को भोगने पड़ रहे थे।

नैल्लोर में महिलाएं शराब की बिक्री के खिलाफ आगे आयीं। करीब पाँच हजार ग्रामीण महिलाओं ने आन्दोलन में भाग लेना शुरू किया। नतीजन नैल्लोर जिले में शराब की दुकानों की नीलामी 17 बार रद्द की गई।

ताड़ी विरोधी आन्दोलन का बहुत साधारण नारा था ताड़ी की बिक्री बन्द करो। किन्तु इस नारे ने महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक मुद्दों को गहरा प्रभावित किया। अब महिलाएं घरेलू हिंसा जैसे निजी मुद्दों पर खुले तौर पर चर्चा करने लगीं। ताड़ी विरोधी आन्दोलन महिला आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया। घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, कार्यस्थल एवं सार्वजनिक स्थानों पर यौन-उत्पीड़न के खिलाफ काम करने वाले महिला समूह जो शहरी क्षेत्र तक सीमित थे, को व्यापक आधार मिला। इन समूहों ने दहेज प्रथा के खिलाफ मुहिम चलाई और लैंगिक समानता के सिद्धान्त पर आधारित व्यक्तिगत एवं सम्पत्ति कानूनों की माँग की।

1990 के दशक के मध्य में महिला आन्दोलन समान राजनीतिक प्रतिनिधित्व की बात करने लगा। संविधान के 73 वें व 74 वें संशोधन के अन्तर्गत महिलाओं को स्थानीय निकायों में 33% आरक्षण दिया गया। राज्यों की विधानसभाओं तथा संसद में महिला आरक्षण लागू करने की माँग की जा रही है, जो कि संसद में विचारधीन है।

पर्यावरणीय आन्दोलन–चिपको आन्दोलन व नर्मदा बचाओ आन्दोलन आज़ादी के बाद देश में अपनाए गए आर्थिक विकास के मॉडल पर पर्यावरणवादियों द्वारा प्रश्नचिन्ह लगाया गया। यहाँ दो उदाहरणों नर्मदा बचाओं आन्दोलन व चिपको आन्दोलन से समझने की कोशिश करेंगे। जहाँ एक और चिपको आन्दोलन ने इस मॉडल में निहित पर्यावरणीय विनाश व स्थानीय लोगों की आजीविका के मुद्दे को सामने रखा वहीं नर्मदा बचाओं आन्दोलन ने लोगों के विस्थापन, उनकी संस्कृति तथा पर्यावरण को इंगित किया।

चिपको आन्दोलन

चिपको आन्दोलन की शुरूआत 1973 में हुई जब मौजूदा उत्तराखण्ड के एक गाँव के स्त्री-पुरूष एक जुट हुए और उन्होंने जंगलों की व्यावसायिक

कटाई का विरोध के लिए उन्होंने नया तरीका अपनाया। उन्होंने पेड़ों को अपनी बाँहों में घेर लिया, ताकि पेड़ों को कटने से बचाया जा सके। यह चिपको आन्दोलन के नाम से विश्व प्रसिद्ध हुआ। चिपको आन्दोलन में परिस्थितिकीय व आर्थिक शोषण के सवाल को उठाया गया। स्थानीय निवासियों की माँग थी कि जंगल कटाई का कोई भी ठेका बाहरी व्यक्ति को नहीं दिया जाना चाहिए। स्थानीय लोगों का जल, जंगल व जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर कारगर नियंत्रण होना चाहिए। स्थानीय लोगों का जल, जंगल व जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर कारगर नियंत्रण होना चाहिए। उन्होंने सरकार से लघु उद्योगों के लिए कम कीमत की सामग्री उपलब्ध कराने की माँग की तथा भूमिहीन वन कर्मियों का आर्थिक मुद्दा उठाया और न्यूनतम मज़दूरी की गारन्टी की माँग की। इस आन्दोलन में महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभाई। शराब विरोधी मुहिम चलाई। आखिरकार इस आन्दोलन को सफलता मिली और सरकार ने 15 सालों के लिये हिमालयी क्षेत्रों में पेड़ों की कटाई पर रोक लगा दी ताकि इस अवधि में क्षेत्र का वनाच्छादन फिर से ठीक अवस्था में आ जाए।

नर्मदा बचाओ आन्दोलन

80 के दशक में नर्मदा घाटी में विकास परियोजना के तहत मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र से गुजरने वाली नर्मदा व उसकी सहायक नदियों पर 30 बड़े, 135 मझोले व 300 छोटे बाँध बनाने का प्रस्ताव रखा गया। गुजरात के सरदार सरोवर और मध्यप्रदेश के नर्मदा सागर बाँध के रूप में दो सबसे बड़ी और बहुउद्देशीय परियोजनाओं का निर्धारण किया गया।

इस परियोजना का उद्देश्य पीने का पानी, सिंचाई, और बिजली के उत्पादन की सुविधा मुहैया कराना और कृषि की उपज में गुणात्मक बढ़ोत्तरी करना था। बाँध की उपयोगिता इस बात से भी जोड़ कर देखी जा रही थी कि इससे बाढ़ व सूखे की आपदाओं पर अंकुश लगाया जा सके।

इस परियोजना का नकारात्मक पहलू यह था कि इसके कारण लोगों के आवास, आजीविका, संस्कृति तथा पर्यावरण पर बुरा असर पड़ा था। इन विकास परियोजनाओं का विरोध करने वाले आन्दोलनकारियों ने इन मुद्दे पर विशेष जोर दिया। उनका कहना था कि ऐसी परियोजनाओं की निर्णय प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की भागीदारी होनी चाहिए और जल, जंगल व जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधन पर उनका प्रभावी नियंत्रण होना चाहिए। इन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि लोकतंत्र में कुछ लोगों के लाभ के लिए अन्य लोगों को नुकसान क्यों उठाना चाहिए? इससे जुड़े आन्दोलनकारी अब बड़े बाँधों का खुला विरोध करते हैं।

इस आन्दोलन का प्रभाव यह हुआ कि सरकार द्वारा 2003 में राष्ट्रीय पुर्नवास नीति बनायी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्रभावित लोगों के पुर्नवास का काम सही ढ़ंग से करने का आदेश दिया। इस आन्दोलन के विरोधियों का कहना है कि आन्दोलन का अड़ियल रवैया, विकास की प्रक्रिया, पानी की उपलब्धता और आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा है।

मछुवारों का आन्दोलन : नेशनल फिशवर्कर्स फोरम

काफी लम्बे समय से तटीय इलाकों में रहने वाला मछुवारा समुदाय की आजीविका का मुख्य साधन मत्स्य आखेट रहा है। मछुवारा समुदाय परम्परागत रूप से इस कार्य को करता आ रहा था। किन्तु 70 के दशक के बाद जब सरकार ने मशीनीकृत मत्स्य आखेट और भारतीय समुद्र में बड़े पैमाने पर मत्स्य दोहन के लिए ''वॉटम ट्राऊलिंग'' जैसे प्रौद्योगिकी के उपयोग की अनुमति दी तो मछुवारों के जीवन व आजीविका पर संकट आ खड़ा हुआ।

1980 के दशक मे मछुवारों ने नेशनल फिशवर्कर्स फोरम के रूप में एक राष्ट्रीय संगठनों को लामबंद किया। इस फोरम ने मछुवारों के स्थानीय संगठनों को लामबंद किया। इस फोरम ने 1997 में सरकार के विरूद्ध पहली कानूनी लड़ाई में सफलता पाई। एन.एफ.एफ केन्द्र सरकार की इस नीति के विरूद्ध जिसके अन्तर्गत व्यावसायिक जहाजों को गहरे समुद्र में मछली मारने की इज़ाजत दी गयी। इस फोरम ने उन लोगों के हितों की रक्षा की जो वास्तव में अपने जीवन यापन में मछली मारने के पेशे से जुड़े हुए थे, न कि उनके जो इस क्षेत्र में महज लाभ के लिए निवेश करते हैं।

जुलाई 2002 में एन.एफ.एफ. ने राष्ट्र व्यापी हड़ताल का आवाहन किया। यह हड़ताल विदेशी कम्पनियों को सरकार द्वारा मछली मारने के लाइसेंस जारी करने के विरोध में की गई थी। इस प्रकार नेशनल फिशवर्कर्स फोरम ने पारिस्थितिकी की रक्षा तथा मछुवारों की आजीविका बचाने हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

नागरिक अधिकार आन्दोलन : सूचना के अधिकार का आन्दोलन–

शासकीय कार्य में पारदर्शिता व भ्रष्टाचार में नकेल कसने की दिशा में सूचना का अधिकार आन्दोलन मील का पत्थर साबित हुआ। इस आन्दोलन की शुरूआत 1990 में मजदूर किसान शक्ति संगठन ने किया। इस संगठन ने सरकार के सामने यह माँग रखी कि राजस्थान की भीम तहसील में अकाल राहत कार्य और मजदूरों को दिया जाने वाले वेतन के रिकार्ड का सार्वजनिक खुलासा किया जाए। वस्तुतः ग्रामीणों का मानना था कि अकाल राहत कार्य के दौरान फर्जी बिल लगाये गये हैं तथा मजदूरों को दिए जाने वाले वेतन में घपला हुआ है। 1994 व 1996 में इस संगठन ने जनसुनवाई का आन्दोलन किया तथा प्रशासन को अपना पक्ष रखने के लिए कहा।

आन्दोलन के दबाव में सरकार को राजस्थान पंचायत अधिनियम में संशोधन करना पड़ा। नये कानून के अन्तर्गत–

(a) जनता को पंचायत के दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने की अनुमति मिल गई।

(b) पंचायत के बजट खर्च, नीतियों और लाभार्थियों की सार्वजनिक घोषणा अनिवार्य कर दिया गया।

(c) पंचायतों को खर्च का ब्यौरा नोटिस बोर्ड व अखबारों में देना आवश्यक हो गया।

1996 में मजदूर किसान शक्ति संगठन ने दिल्ली में सूचना के अधिकार को लेकर राष्ट्रीय समिति का गठन किया। इस आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप पहले 2002 में सूचना की स्वतंत्रता नाम का एक विधेयक पारित हुआ, जो कि काफी कमजोर अधिनियम था। 2004 में इसको संशोधित करके नया सूचना के अधिकार का विधेयक पारित किया गया, जिसे 2005 में राष्ट्रपति की मंजूरी हासिल हुई।

प्रमुख शब्द/ पाठ्यगत अवधारणा

1. जन आन्दोलन–किसी उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की जाने वाली जन कार्यवाही।

2. दलीय आन्दोलन–ऐसे आन्दोलन जो सैद्धान्तिक (वैचारिक) रूप से किसी राजनीतिक दल से जुड़े होते हैं।

3. गैर दलीय आन्दोलन–ऐसे आन्दोलन जो किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं रखते हैं जैसे–दलित, किसान, छात्र, पर्यावरण व महिला आन्दोलन।

4. स्वतंत्र राजनीतिक संगठन–दलगत व चुनावी राजनीति से अलग रहकर नागरिकों की सीधी व सक्रिय भागीदारी पर बल देते हैं।

5. वॉटम ट्राऊलिंग–गहरे समुद्र में मत्स्य दोहन के लिए मशीनों द्वारा अपनायी जाने वाली प्रौद्योगिकी।

क्रियाकलाप

1. वर्तमान समय में चल रहे किसी पर्यावरणीय आन्दोलन से सम्बन्धित तथ्यों को इकट्ठा कीजिए। इस आन्दोलन की प्रमुख माँगे क्या हैं? इन माँगों में कठिनाई क्या है?

2. आज महिलाओं को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनकी सूची बनाइए। आप इन कठिनाइयों से निपटने के लिए किन सुझावों को देना चाहेंगे।

3. क्या आपने किसी आन्दोलन को नजदीक से देखा या सुना है? इस आन्दोलन में किन मुद्दों को उठाया गया था? यह मुद्दे कहाँ तक सुलझे हैं? आप आन्दोलनकारियों को किन सुझावों को देना चाहेंगे।

सम्वर्द्धित मूल्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त छात्रों में निम्न महत्त्वपूर्ण मूल्यों के विकास में मदद् मिलेगी–

* सामूहिक प्रयास.

* संगठन की भावना.

* प्रकृति से लगाव.

* प्राकृतिक संसाधनों की अहमियत.

* समाज के वंचित वर्ग के प्रति सम्वेदना.

प्रश्न

1. दलित पैंथर्स के गठन का उद्देश्य क्या था?

2. भारतीय किसान यूनियन द्वारा चलाये आन्दोलन की विशिष्टता क्या थी?

3. चिपको आन्दोलन के विशिष्ट पहलू को उजागर कीजिए।

4. शेतकारी संगठन ने किसानों के आन्दोलन को इंडिया बनाम् भारत का संग्राम करार क्यों दिया?

5. दल आधारित आन्दोलन का तात्पर्य उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

6. ताड़ी विरोधी आन्दोलन की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।

7. नर्मदा घाटी की बाँध परियोजनाओं के पक्ष व विपक्ष में दो-दो तर्क दीजिए।

8. ''जन आन्दोलन, राजनीति को बेहतर ढंग से समझने में मदद् देता है'' आप इस वाक्य कथन से कहाँ तक सहमत हैं?

पाठ-7

पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधान

परिचय

वैश्विक राजनीति में पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों का मुद्दा ''मानव सुरक्षा'' से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि वैश्विक तापमान में वृद्धि, संसाधनों का मनमाना इस्तेमाल व मूलवासियों की समस्याएं हमारी चिन्ताओं को बढ़ाती है। 1960 के दशक के बाद पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में तेजी आयी है। लेकिन सामूहिक व लगातार वैश्विक प्रयास ही इस धरती को हरा-भरा रखने में मदद् कर सकते हैं। विभिन्न देशों के समक्ष सबसे गम्भीर चुनौती वैश्विक पर्यावरण को आगे कोई नुकसान पहुँचाए बगैर आर्थिक विकास करने की है।

इस अध्याय में पर्यावरण चिन्ताओं, विश्व की सांझी सम्पदा, संसाधनों को लेकर राज्यों के बीच तनातनी और अनन्तकाल से रहते चले आ रहे मूलवासियों के सवाल को उठाया गया है।

इस अध्याय के अध्ययन से –

* पर्यावरण के मुद्दे की गम्भीरता समझ सकेंगे।

* पर्यावरण के मुद्दे को सुलझाने के लिए किए जा रहे प्रयासों का अवलोकन कर सकेंगे।

* पर्यावरण के मुद्दे को सुलझाने के प्रयासों के दौरान उभर रहे मतभेदों को जान सकेंगे।

* भारत का पर्यावरण के मुद्दे पर पक्ष व उसके द्वारा किए जा रहे पर्यावरणीय प्रयासों को जान सकेंगे।

* विश्व की साझी सम्पदा की सुरक्षा, भू-राजनीति का महत्व और मूलवासियों की समस्या जैसे ज्वलन्त वैश्विक मुद्दों पर समझ विकसित कर सकेंगे।

वैश्विक राजनीति में पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण क्यों?

वैश्विक राजनीति में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ताएं एक गम्भीर मुद्दा है। निम्न तथ्य इन चिन्ताओं की पुष्टि करते हैं–

* विश्व में खाद्य आवश्यकता बढ़ रही है, जबकि कृषि योग्य जमीन में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है। जमीन की उर्वरता में भी कमीं आ रही है।

* चारागाहों की स्थिति भी चिन्तनीय है। मत्स्य भण्डार घट रहा है। जलाशयों की जलराशि में तेजी से कमी आ रही है।

* संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व विकास रिपोर्ट (2006) के अनुसार विकासशील देशों की सवा अरब जनता को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है। ढाई अरब आबादी गंदगी में रहने को मजबूर है। इस बजट से तीस लाख से ज्यादा बच्चे हर साल मौत के शिकार होते हैं।

* प्राकृतिक वनों की कटाई के कारण जैव विविधता को हानि हो रही है।

* धरती के ऊपरी वायुमंडल में ओजोन गैस की मात्रा में लगातार कमी हो रही है। जबकि ओजोन गैस की परत सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों को धरती पर पहुँचने से रोकती है।

* समुद्र तटवर्ती जल जमीनी क्रियाकलापों से प्रदूषित हो रहा है। तटीय इलाकों में मनुष्यों की सघन बसाहट से समुद्रीय पर्यावरण की गुणवत्ता में भारी गिरावट आएगी।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय चिन्ता से निपटने के प्रयास पर्यावरण से जुड़े सरोकारों का एक लम्बा इतिहास है। किन्तु आर्थिक विकास के कारण पर्यावरण पर असर की चिन्ता ने 1960 के दशक में राजनीतिक चरित्र ग्रहण किया। 1972 में विचारकों व बुद्धिजीवियों के एक समूह, जिन्हें 'क्लब आफ रोम' के नाम से जाना जाता है, ने 'लिमिट टू ग्रोथ' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक विश्व में बढ़ती जनसंख्या की तुलना में धरती के घटते संसाधनों का अंदेशा व्यक्त करती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम सहित अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने पर्यावरण से जुड़े मसलों पर सम्मेलन कराए और इस विषय पर अध्ययन को बढ़ावा दिया। इस प्रकार पर्यावरण वैश्विक राजनीति का महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

1987 में 'अवर कॉमन फ्यूचर' शीर्षक से ''बर्टलैंड रिपोर्ट'' प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट में चेतावनी दी गई कि आर्थिक विकास के वर्तमान तौर-तरीके आगे चलकर टिकाऊ साबित नहीं होंगे। विश्व के दक्षिणी हिस्से में औद्योगिक विकास की माँग ज्यादा प्रबल है।

1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ का पर्यावरण और विकास के मुद्दे पर एक सम्मेलन ब्राजील के शहर रियो-डी- जेनेरियो में हुआ। इसे रियो सम्मेलन अथवा 'पृथ्वी सम्मेलन' के नाम से जाना जाता है। विकसित देश अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध तथा गरीब और विकासशील देश अर्थात् दक्षिणी गोलार्द्ध के अलग-अलग एजेंडे के साथ इस सम्मेलन में सामने आए। उत्तरी देशों की मुख्य चिन्ता ओजोन परत में छेद और वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) को लेकर थी। दक्षिणी देश आर्थिक विकास और पर्यावरण प्रबंधन के आपसी रिश्ते को सुलझाने के लिए ज्यादा चिंतित थे।

रियो सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता और वानिकी के सम्बन्ध में नियमाचार निर्धारित हुए। इसमें विकास के लिए कुछ तौर तरीके भी सुझाए गए, जिन्हें 'एजेन्डा-21' कहा गया। सम्मेलन में इस बात पर तो सहमति थी कि आर्थिक वृद्धि का तरीका ऐसा होना चाहिए कि इससे पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे। इसे टिकाऊ विकास का तरीका कहा गया। टिकाऊ विकास कैसे किया जाए, यह प्रश्न बना रहा। आलोचकों का मानना है कि एजेन्डा-21 पर्यावरण संरक्षण के बजाय आर्थिक वृद्धि का पक्षधर अधिक है।

साझी, परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियाँ

पर्यावरण को लेकर उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों के रवैये में अंतर है। दक्षिण के विकासशील देशों का तर्क है कि विश्व में पारिस्थितिकी को नुकसान अधिकांशतया विकसित देशों के औद्योगिक विकास से पहुँचा है। इसलिए पर्यावरण के नुकसान की भरपाई भी इन्हीं देशों को उठानी चाहिए। साथ ही चूँकि विकासशील देश अभी औद्योगीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण कानून के निर्माण प्रयोग और व्याख्या में विकासशील देशों की विशिष्ट जरूरतों का ध्यान रखा जाना चाहिए। सन् 1992 में हुए पृथ्वी सम्मेलन में इस तर्क को मान लिया गया और इसे 'साझी परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियों' का सिद्धान्त कहा गया।

रियो-घोषणा पत्र के अनुसार ''धरती के पारिस्थितकी तंत्र की अखण्डता और गुणवत्ता की बहाली, सुरक्षा तथा संरक्षण के लिए विभिन्न देश विश्व-बंधुत्व की भावना से आपस से आपदा में सहयोग करेंगे। पर्यावरण के विश्वव्यापी अपक्षय में विभिन्न राज्यों का योगदान अलग-अलग है। इसे देखते हुए विभिन्न राज्यों की सांझी परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियाँ होगी। विकसित देशों के समाजों का वैश्विक पर्यावरण पर दबाव ज्यादा है और इन देशों के पास विपुल प्रौद्योगिक एवं वित्तीय संसाधन हैं। इसे देखते हुए टिकाऊ विकास के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास में विकसित देश अपनी खास जिम्मेदारी स्वीकार करते हैं।

जलवायु के परिवर्तन से सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्र संघ के नियमाचार अर्थात् यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कंवेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC–1992) में भी 'सांझी परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियों' के सिद्धान्त को दोहराया गया। इस से भी और मौजूदा समय में भी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में सबसे ज्यादा हिस्सा विकसित देशों का है। जबकि विकासशील देशों का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन दर अपेक्षाकृत कम है।

जलवायु के परिवर्तन से सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्र संघ के नियमाचार (UNFCCC–1992) के सिद्धान्तों के अनुरूप जापान के क्योटो में 1997 में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हुआ, जिसे, क्योटो प्रोटोकॉल के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत औद्योगीकरण देशों के लिए ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन और हाइड्रो-फ्लोरो कार्बन आदि को वैश्विक तापवृद्धि के लिये जिम्मेदार माना जाता है।

पर्यावरणीय मसले पर भारत का पक्ष

भारत पर्यावरणीय मसले पर वैश्विक चिन्ता से जुड़ा हुआ है। भारत ने 2002 में क्योटो प्रोटोकॉल (1997) पर हस्ताक्षर किये और इसका अनुमोदन किया। भारत, चीन और अन्य विकासशील देशों को क्योटो प्रोटोकाल से छूट दी गई है, क्योंकि औद्योगीकरण के दौर में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के मामले में इनका कुछ खास योगदान नहीं था।

भारत में 2030 तक कार्बन का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन बढ़ने के बावजूद विश्व (सन् 2000) के औसत (3.8 टन प्रति व्यक्ति) के आधे से भी कम होगा। सन् 2000 तक भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 0.9 टन था और अनुमान है कि सन् 2030 तक यह मात्रा बढ़कर 1.6 टन प्रति व्यक्ति हो जाएगी।

भारत सरकार ने विभिन्न नीतियों व कार्यक्रमों के द्वारा पर्यावरण से सम्बन्धित वैश्विक प्रयासों में भागीदारी की है। भारत ने अपनी नेशनल आटो फ्यूल पालिसी के अन्तर्गत वाहनों के लिए स्वच्छ ईंधन अनिवार्य कर दिया है। सन् 2001 में ऊर्जा संरक्षण अधिनियम पारित हुआ। सन् 2003 के बिजली अधिनियम में अक्षय (Renewable) ऊर्जा के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया है। प्राकृतिक गैस के आयात और स्वच्छ कोयले के उपयोग पर आधारित प्रौद्योगिकी को अपनाने की और ध्यान दिया जा रहा है। भारत बायोडीजल से सम्बन्धित एक राष्ट्रीय मिशन को चलाने की और भी तत्पर है।

भारत का मानना है कि रियो सम्मेलन के समझौते के अनुरूप विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को वित्तीय संसाधन और स्वच्छ प्रौद्योगिकी मुहैया कराना चाहिए ताकि विकासशील देश फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेन्ज की मौलिक प्रतिबद्धताओं को पूरा कर सकें। दक्षेस देशों को भी पर्यावरणीय मामलों पर एक राय बनानी होगी ताकि इस क्षेत्र की आवाज़ वजनीय हो सके।

विश्व की सांझी सम्पदा की सुरक्षा

सांझी सम्पदा उन संसाधनों को कहते हैं जिन पर एक व्यक्ति का नहीं बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता है, जैसे-पार्क, नदी, चारगाह आदि। इसी तरह विश्व के कुछ हिस्से और क्षेत्र किसी एक देश के सम्प्रभु क्षेत्राधिकार से बाहर होते हैं। इसीलिए उनकी देखभाल अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा होती होती है। इन्हें वैश्विक सम्पदा या मानवता की साझी विरासत कहा जाता है। जैसे-पृथ्वी का वायुमंडल, अंटार्टिका, समुद्री सतह और बाहरी अन्तरिक्ष आदि।

वैश्विक सम्पदा की सुरक्षा को लेकर कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हुये हैं जैसे-अर्न्टाटिका संधि (1959), मान्ट्रियल न्यायाचार (प्रोटोकॉल सन् 1987) और अर्न्टाटिका पर्यावरण न्यायाचार (1991)। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में बाधा यह है कि अपुष्ट वैज्ञानिक सबूत व समय सीमा के आधार पर सहमति बना पाना कठिन है। 1980 के दशक के मध्य में अंर्टाटिका के ऊपर ओजोन परत में छिद्र की पहचान हुई, जिसने विश्व स्तर पर पर्यावरणीय चिंता को बढ़ा दिया है।

वैश्विक सम्पदा के रूप में बाहरी अन्तरिक्ष के दोहन के सम्बन्ध में उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों के बीच असमानता है। धरती के वायुमण्डल और समुद्रीय सतह के समान यहाँ भी महत्त्वपूर्ण मसला प्रौद्योगिकी और औद्योगिक विकास का है। बाहरी अन्तरिक्ष में जो दोहन कार्य हो रहे हैं उनके फायदे न तो वर्तमान पीढ़ी में सबके लिये बराबर और न ही आगे की पीढ़ियों के लिये।

संसाधनों की भू-राजनीति

भू-राजनीति देश की भौगोलिक विशेषताओं द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार को समझने का प्रयास करता है। संसाधनों की भू-राजनीति से क्या, कब, कैसे व कहाँ हासिल होता है, जैसे सवालों से जूझती है। यूरोपीय ताकतों के विश्वव्यापी प्रसार का एक मुख्य साधन और मकसद संसाधन रहे हैं। संसाधनों को लेकर अक्सर राज्यों के बीच तनातनी रही है।

शीतयुद्ध के दौरान विकसित देशों ने संसाधनों की सतत आपूर्ति के लिए कई कदम उठाए। जैसे-संसाधन दोहन के इलाके तथा समुद्री परिवहन मार्गों के इर्दगिर्द सेना की तैनाती, महत्त्वपूर्ण संसाधनों का भण्डारण, संसाधनों के उत्पादन देशों मनपसन्द सरकारों की बहाली व बहुराष्ट्रीय निगमों और अपने हित साधक अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को समर्थन देना शामिल है।

पश्चिमी देशों के राजनीतिक चिन्तन का केन्द्रीय सरोकार यह था कि संसाधनों की पहुँच बनी रहे। क्योंकि सोवियत संघ इसे खतरे में डाल सकता था। सोवियत संघ की विघटन के बाद अनेक खनिज खासकर रेडियोधर्मी खनिजों से जुड़े व्यावसायिक फैंसलों को लेकर भी सरकारों को चिन्ता सताती है। वर्तमान में वैश्विक राजनिति में तेल सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन बना हुआ है। विश्व की अधिकांश अर्थव्यवस्था तेल पर निर्भर रही है। पेट्रोलियम का इतिहास युद्ध व संघर्ष का इतिहास है। यह बात पश्चिम एशिया व मध्य एशिया में सबसे ज्यादा नजर आती है। पश्चिम एशिया क्षेत्र में विश्व के ज्ञात तेल भण्डार का 64% हिस्सा मौजूद है। केवल सऊदी अरब के पास विश्व के कुल तेल भण्डार का एक चौथाई हिस्सा मौजूद है। इराक का तेल भण्डार 1200 अरब बैरल से ज्यादा है। और यह दूसरे नम्बर पर है।

कई विकसित अर्थव्यवस्थाओं के तेल की आपूर्ति यहीं से होती है। यद्यपि यह देश इन इलाकों से बहुत दूरी पर हैं।

विश्व राजनीति का दूसरा महत्त्वपूर्ण संसाधन पानी है। स्वच्छ पेयजल, विश्व के हर हिस्से में मौजूद नहीं है। इसलिए आशंका व्यक्त की जाती है कि जल संसाधन 21 वीं सदी में झगड़े का कारण न बन जाये। उदाहरण के लिये नदी के उद्गम स्थल से दूर बसा हुआ देश यह चिन्ता व्यक्त कर सकते हैं कि नदी के उद्गम के नजदीक बसे हुए देश द्वारा बाँध बनाने, अत्यधिक सिंचाई करने और अत्यधिक जल प्रदूषित करने जैसे कामों द्वारा दूर बसे हुये देशों को मिलने वाले पानी की मात्रा कम होगी या उसकी गुणवत्ता घटेगी।

जल संसाधनों को लेकर 1950 से 1960 के दशक में इजराइल, सीरिया तथा जॉर्डन के बीच हुआ संघर्ष प्रमुख है। इनमें से प्रत्येक देश ने जॉर्डन और यारमुख नदी से पानी का बहाव मोड़ने की कोशिश की थी। इसी प्रकार तुर्की, सीरिया और इराक के बीच फरात नदी पर बाँध के निर्माण को लेकर एक-दूसरे से ठनी हुयी है।

मूलवासी और उनके अधिकार

मूलवासियों का सवाल पर्यावरण संसाधन व राजनीति से सम्बन्धित है। 1982 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मूलवासियों का परिभाषित किया। संयुक्त राष्ट्र ने इन्हें ऐसे लोगों का वंशज बताया जो किसी मौजूदा देश में बहुत दिनों से रहते चले आ रहे थे। फिर किसी दूसरी संस्कृति या जाति-मूल के लोग विश्व के दूसरे हिस्से से उस देश आए और इन लोगों को आधीन बना लिया गया। किसी देश के मूलवासी आज भी अपनी परम्परा, संस्कृति, रिवाज तथा अपने खास सामाजिक-आर्थिक ढर्रे पर जीवन-यापन करना पसंद करते हैं।

भारत सहित विश्व के विभिन्न हिस्सों में मूलवासियों की संख्या लगभग 30 करोड़ है। फिलिपींस के कोरडिलेरा क्षेत्र में 20 लाख मूलवासी लोग रहते हैं। दूसरे सामाजिक आन्दोलनों की तरह मूलवासी आज भी अपने संघर्ष, अजेंडा और अधिकारों की आवाज़ उठाते हैं। उनका मुख्य लक्ष्य विश्व बिरादरी में बराबरी का दर्जा पाने का है।

मूलवासियों के निवास वाले स्थान मध्य और दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारत में है। जहाँ इन्हें आदिवासी अथवा जनजाति कहा जाता है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड समेत ओसियाना क्षेत्र के बहुत से द्वीपीय देशों में हजारों सालों से पॉलिनेशिया, मैलनेशिया, और माइक्रोनेशिया

वंशज के मूल निवासी रहते हैं। सरकारों से इन समुदायों की माँग है कि इन्हें मूलवासी कौम के रूप में अपनी स्वतंत्र पहचान रखने वाला समुदाय माना जाये। आश्चर्यजनक रूप से विश्वभर के मूलवासियों की भूमि और उस पर आधारित जीवन प्रणालियों के बारे में मूलवासियों में एक जैसी सोच है। मूलवासियों के अनुसार भूमि की हानि का अर्थ है, आर्थिक संसाधनों के एक आधार की हानि और यह मूलवासियों के जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा है।

भारत में मूलवासी के लिए अनुसूचित जनजाति या आदिवासी शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह कुल जनसंख्या का लगभग 8% है। कुछ घुमन्तू जनजातियों को छोड़कर अधिकांश आदिवासी जीवन-यापन के लिए खेती पर निर्भर हैं। राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिहाज़ से इन्हें संवैधानिक संरक्षण मिला हुआ है। किन्तु आर्थिक विकास का लाभ इन तक पहुँचना अभी बाकी है। आज़ादी के बाद से विकास से जुड़ी परियोजनाओं के कारण बहुत बड़ी संख्या में आदिवासी विस्थापित हुए हैं। दरअसल इन लोगों ने विकास की बड़ी कीमत चुकायी है।

1970 के दशक में विश्व के विभिन्न भागों के मूलवासी नेताओं के बीच सम्पर्क बढ़ा है। उनके साझे सरोकारों व अनुभवों को एक संगठन का रूप 1975 में 'वर्ल्ड काउंसिल आफ इंडिजिन्स पीपल' के गठन से मिला।

पर्यावरणीय आन्दोलन

पर्यावरणीय हानि की चुनौतियों से निपटने के लिये सरकारी व गैर-सरकारी दोनों ही स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। सरकारी प्रयासों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। विश्व के विभिन्न भागों में सक्रिय पर्यावरण के प्रति सचेत कार्यकर्त्ताओं व गैर सरकारी संगठनों ने सबसे अधिक जीवंत, विविधतापूर्ण तथा ताकतवर सामाजिक आन्दोलन चलाए हैं। इन सामाजिक आन्दोलनों से उपजी सामाजिक चेतना के अनुसार राजनीतिक कार्यवाही जन्म लेती है या खोजी जाती है। इन आन्दोलनों की एक मुख्य विशेषता उनकी 'विविधता' है।

* दक्षिणी देशों विशेषकर मैक्सिको चिली, भारत, ब्राजील आदि देशों में वनों की कटाई खतरनाक गति से जारी है।

* खनिज उद्योग दुनिया के ताकतवर उद्योगों में से एक है। उदारीकरण के बाद बहुराष्ट्रीय खनिज कम्पनियों ने दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में अपना तंत्र फैलाया। खनिज संसाधनों का दोहन, रसायनों का अधिक उपयोग, भूमि व जल मार्गों को प्रदूषित करना व स्थानीय वनस्पतियों को नुकसान पहुँचाना और जन समुदायों का विस्थापन आदि के कारण विश्व के विभिन्न भागों में खनिज उद्योग की आलोचना व विरोध हुआ है। उदाहरण के लिए फिलिपींस में आस्ट्रेलिया की बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'वेस्टर्न माइनिंग कारपोरेशन' के खिलाफ जबरदस्त विरोध हुआ। इसका विरोध स्वदेश यानि आस्ट्रेलिया में भी हुआ। वहाँ विरोध करने वालों में परमाणु-शक्ति के विरोधी व आदिवासियों के बुनियादी अधिकारों के समर्थक शामिल है।

कुछ आन्दोलन बड़े बाँधों के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। इन्हें अब नदियों को बचाने के आंदोलनों के रूप में भी देखा जा रहा है। 1980 के दशक की शुरूआत में विश्व का पहला बाँध विरोधी आन्दोलन आस्ट्रेलिया में चला। यह आन्दोलन फ्रैंकलिन नदी तथा इसके परवर्ती वन को बचाने का आन्दोलन था। दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में बड़े बाँध बनाने की होड़ लगी है, जिसका विरोध हो रहा है। इन आन्दोलनों में भारत में चलाया जा रहा नर्मदा विरोधी तथा पर्यावरण बचाओ आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये अहिंसक है।

शब्दावली (Glossary)/ पाठ्यगत अवधारणा–

* क्लब ऑफ रोम–वैश्विक मामलों से सरोकार रखने वाला विद्वानों का एक समूह, जिसने 1972 में लिमिट्स टू ग्रोथ'' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित की।

* पृथ्वी सम्मेलन–1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ का पर्यावरण और विकास के मुद्दे पर केन्द्रित सम्मेलन, जो ब्राजील के शहर रियो डी जेनेरियो में हुआ। इसे रियो सम्मेलन भी कहा जाता है।

* अजेंडा-21–रियो सम्मेलन में अजेडा-21 के रूप में विकास के तौर-तरीके सुझाए गए।

* साझी सम्पदा–उन संसाधनों को कहा गया, जिन पर किसी एक का नहीं बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता है। जैसे पृथ्वी का वायुमंडल, अंटार्कटिका आदि।

* टिकाऊ विकास–आर्थिक वृद्धि का तरीका ऐसा होना चाहिए कि इससे पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे व संसाधनो का ह्रास न हो।

* ग्रीन हाउस गैस–कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और हाइड्रोफ्लोरो कार्बन आदि गैसों को ग्रीन हाउस गैस कहा जाता है। ये गैस वैश्विक तापवृद्धि के लिए जिम्मेदार मानी जाती हैं।

* मूलवासी–इन्हें ऐसे लोगों का वंशज माना जाता है, जो किसी मौजूदा देश में बहुत दिनों से रहते चले आ रहे थे। भारत में इन्हें जनजाति अथवा आदिवासी कहा जाता है।

* भू-राजनीति–इसके अन्तर्गत देश की भौगोलिक विशेषताओं का किसी देश की राजनीति व विदेश सम्बन्धों में असर का अध्ययन करते हैं।

शिक्षकों को सुझाये गए क्रियाकलाप

1. छात्रों को समूह में बाँटकर निम्न कार्य सुझाएं–

* पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए पिछले दो दशकों में किये गये उपायों की सूची बनाइए। क्या आप इन उपायों से संतुष्ट हैं? यदि नहीं, तो नए उपाय सुझाइए।

विभिन्न समूहों के उपायों व सुझावों को एकीकृत करके कक्षा में चर्चा कर सकते हैं।

2. ''आदिवासियों की समस्या के समाधान हेतु किए जा रहे प्रयासों का ब्यौरा जुटाइए।'' प्रत्येक छात्र को यह कार्य दिया जा सकता है। जुटा गये ब्यौरों को एकीकृत करके कक्षा में बताया जा सकता है।

3. दिल्ली में यमुना नदी को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए किए जा रहे प्रयासों का उल्लेख कीजिए। आप इस सम्बन्ध में कौन-कौन से नए सुझावों को देना चाहेंगे। छात्रों को यमुना सफाई अभियान से सम्बन्धित अखबारों की कतरन व अन्य सामग्रियों के आधार पर फाइल बनाने का कार्य सौंपा जा सकता है।

संर्वद्धित मूल्य

इस अध्याय के अध्ययन से विद्यार्थियों में निम्न मूल्य विकसित हो सकेंगे–

* पर्यावरण के प्रति जागरूकता

* जीवनोपयोगी व महत्त्वपूर्ण संसाधनों जैसे-जल व पैट्रोलियम पदार्थ की महत्ता

* मूलवासियों (आदिवासियों) के प्रति सम्वेदना

* सामूहिक प्रयास का महत्त्व

मूल्यांकन

1. क्योटो प्रोटोकॉल का सम्बन्ध किससे है?

2. वैश्विक ताप वृद्धि में सहायक किन्हीं दो गैसों का नाम लिखिए।

3. 1987 में आयी बर्टलैण्ड रिपोर्ट का शीर्षक क्या था?

4. टिकाऊ विकास से क्या तात्पर्य है?

5. मूलवासियों की किन्हीं दो समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

6. संसाधनों की भू-राजनीति से क्या तात्पर्य है? किन्हीं दो संसाधनों के उदाहरण से अपनी बात स्पष्ट कीजिए।

7. ''साझी परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियाँ'' के सिद्धान्त का उदाहरण सहित परीक्षण कीजिए।

8. पर्यावरणीय सम्बन्धी किन्हीं तीन चिन्ताओं का वर्णन कीजिए जो वैश्विक राजनीति के मुद्दे बन चुकी हैं।

Table of Contents

1. Cover
2. ch1